11

विकासः स्वरूप

क्या आपने कभी सोचा है कि एक वयस्क व्यक्ति की तुलना में बच्चे का व्यवहार अलग क्यों होता है अथवा उनके शारीरिक रचना अलग क्यों होती हैं? हम सामान्यतः उस वास्तविक तथ्य को नहीं जानते हैं कि हममें निरन्तर बदलाव होता रहता है। जब एक शिशु का विकास बच्चे के रूप में होता है तो उनमें कुछ बदलाव होते हैं और तत्पश्चात वयस्क बनने पर भी बदलाव नजर आते हैं। परन्तु कुछ बदलाव जैसे भावुकता की अभिव्यक्ति में उत्तेजित हो जाना, अथवा सोचने और कारण जानने की योग्यता, व्यक्तिगत मूल्यों का गठन अथवा स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की क्षमता, हालांकि ये सब बदलाव स्पष्ट रूप से नहीं देखे जा सकते हैं, परन्तु परिपक्वता की स्थिति में बदलाव तथा व्यक्ति को सक्षम बनाने की प्रक्रिया स्वतः ही घटित होती रहती है। क्रमशः परिवर्तनों में परिपक्वता की और को लाने वाली इस श्रंखला की प्रक्रिया को ही विकास के रूप में जाना जाता है। इस पाठ से आपको विकास से संबंधित अनेक प्रश्नों को समझने तथा उनके उत्तर देने में सहायता मिलेगी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप निम्नलिखित के लिए सक्षम होंगेः

- विकास की अवधारणा तथा प्रक्रियाओं को समझेंगे;
- विकास के सिद्धान्तों की पहचान और व्याख्या कर सकेंगे, और
- विकास अध्ययन के लिए मुख्य एप्रोच के संबंध में जानकारी प्राप्त करने एवं समझने में सक्षम होंगे;
- वद्धि एवं विकास के बीच भेद कर सकेंगे।

11.1 विकास की प्रकति

विकास के दो मुख्य पहलू हैं अर्थात् इस भाग में विकास का अर्थ और उसकी प्रक्रियाओं की व्याख्या की जा रही है।

11.1.1 विकास का क्या अर्थ है?

साधारण शब्दों में, विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति के संपूर्ण जीवनकाल में वद्धि एवं परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन को इस रूप में भी परिभाषित किया जा सकता हैः यह परिवर्तनों की एक प्रगतिशील श्रंखला है जो कि क्रमिक रूप से होता है और यह परिपक्वता के लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

प्रगतिशील शब्द इंगित करता है कि परिवर्तन दिशात्मक, आगे विकास की ओर होता है तथा पीछे की ओर नहीं होता।

क्रमबद्धता तथा सुसंगतता शब्द यह स्पष्ट करता है कि विकासात्मक क्रम में विभिन्न चरणों के बीच निश्चित संबंध होता है।

प्रत्येक परिवर्तन इस बात पर निर्भर करता है कि क्या शुरू किया गया है और इसके पश्चात क्या परिणाम होगा।

विकास को सारांश रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. इसमें प्रगतिशीलता, सुसंगतता तथा क्रमबद्धता होती है।
2. परिवर्तन जो कि निश्चित दिशा तथा विकास की ओर अग्रसर होता है।
3. परिवर्तन जो कि अव्यवस्थित नहीं होता है परन्तु जहां पर, मौजूदा समय में क्या है और इसके पश्चात् (दूसरे चरण में) क्या होगा, के बीच निश्चित संबंध होता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि विकास के फलस्वरूप एक व्यक्ति में नयी विशेषतायें तथा योग्यतायें आती हैं। यह कार्य के निम्नतम स्तर से उच्च स्तर की ओर अग्रसर होते हैं।

विकास के परिणाम के रूप में होने वाले सभी परिवर्तन एक समान नहीं होते। उदाहरण के लिए आकार में परिवर्तन (शारीरिक विकास), आनुपातिक रूप में परिवर्तन (बच्चे से वयस्क), अभिलक्षणों में परिवर्तन (बच्चे के दांत का लोप) तथा नए अभिलक्षणों को अर्जित करना एक अलग तरह का परिवर्तन है। इस प्रकार के परिवर्तन स्पष्ट रूप में देखे जा सकते हैं और जिसकी पहचान विशेष रूप से ग्रोथ के समय की जा सकती है। यहां वद्धि (ग्रोथ) तथा विकास ''डेवलेपमेन्ट'' के शब्दों के बीच अन्तर बताना आवश्यक हो जाता है। इनका प्रयोग पारस्परिक परिवर्तन के रूप में अक्सर किया जाता है, तथापि, ये एक दूसरे से अत्यधिक रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं और फिर भी इनके बीच काफी अन्तर है।

टिप्पणी

ग्रोथ (वद्धि) को स्पष्ट रूप से मापा जा सकता है अथवा विशिष्ट परिवर्तन जो कि मात्रात्मक प्रकति के होते हैं जैसे ''लम्बाई में वद्धि'' एक लड़की के बाल लम्बे और सुन्दर लगते हैं; और एक वद्ध आदमी के बाल रोएं आदि जैसे लगते हैं।

दूसरे शब्दों में, विकास उन्मीलन प्रविधि अथवा क्षमता में वद्धि के गुणात्मक परिवर्तनों को दर्शाता है। यह स्पष्ट रूप से वद्धि (ग्रोथ) के रूप में नहीं होता। विकास के उदाहरणों में टिप्पणियां इस प्रकार हैं ''वह एक सुन्दर नौजवान महिला हो गई है'', ''उन्होंने संगीत में अपनी प्रतिभा का विकास अच्छी तरह से कर लिया है'', ''अब हमारे पिताजी सामाजिक कार्य कर रहे हैं क्योंकि वे सेवानिवत्त हो गए हैं'' आदि। ये सभी दष्टांत वैयक्तिक हितों तथा योग्यताओं में परिवर्तनों के हैं। इस प्रकार ''विकास'' (डेवलपमेन्ट) एक व्यापक शब्द है तथा वद्धि ''ग्रोथ'' इसके एक अवयवों में से है।

11.2 कैसे विकास होता है?

दो मुख्य प्रक्रियाओं के माध्यम से विकास (डेवलपमेन्ट) होता हैः

(i) परिपकवता और

(ii) सीख (लर्निंग)

1. परिपक्वता एक व्यक्ति में मौजूद विशेषताओं (गुणों) अथवा संभावनाओं को प्रकट करती है अथवा उसे सामान्यतः निखारती है क्योंकि ये अनुवांशिक होते हैं। यह आनुवांशिक रूप से व्यक्ति को क्या गुण मिले हैं, का शुद्ध परिणाम है।
2. सीखने से बच्चे आस पास के माहौल में आपसी वार्तालाप करते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनके व्यवहार में परिवर्तन होता है।

उदाहरणार्थ, जब एक बच्चे के दांत निकलने शुरू होते हैं अथवा चलना–फिरना शुरू होता है तो यह सब उसकी परिपक्वता के कारण ही होता है। परन्तु, जब एक बच्चा किसी विशेष प्रकार के नत्य को करने के लिए निपुणता हासिल करता है अथवा एक विशेष प्रकार का गाना गाता है तो यह एक सीखने का कार्य है।

परिपक्वता तथा सीख (लर्निंग) दोनों साथ–साथ चलते रहते हैं और ये एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। वस्तुतः वातावरणीय सीखना अक्सर परिपक्वता को प्रोत्साहित करते हैं। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति में ज्ञानात्मक योग्यताओं का विकास अनुभव तथा वातावरण एवं परिपक्वता द्वारा सुलभ कराये गए अवसरों पर निर्भर करता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि परिपक्वता सीखने के लिए कच्ची सामग्री सुलभ कराता है अर्थात् यदि विकास के लिए अनुवांशिक गुणों की संभावनाएं सीमित हैं तो बिना पर्याप्त प्रयास के व्यक्ति अपेक्षित परिणाम प्राप्त कर सकता है।

अतः, अकेले प्रयास से ही कोई व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय धावक नहीं हो सकता जब तक कि व्यक्ति में सर्वश्रेष्ठ शारीरिक योग्यताओं के लिए आनुवांशिक गुण न हों।

मुख्य बिन्दुओं का सारांश इस प्रकार है:

- परिपक्वता तथा सीखना दो प्रक्रियाएं हैं जिसके माध्यम से विकास होता है।
- आनुवांशिक रॉ मैटीरियल के कारण परिपक्वता आती है जो कि सभी व्यक्तियों में होती है।
- विभिन्न गतिविधियों को करने से वातावरण के साथ सीखने एवं वार्तालाप करने के परिणामस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है।
- परिपक्वता तथा सीखना पूरक प्रक्रियाएं हैं।

11.3 वद्धि (ग्रोथ) वक्र

आप पहले के अनुच्छेद में सीख चुके हैं कि वद्धि (ग्रोथ) को मापा जा सकता है और यह मात्रात्मक रूप में हो सकता है। आइए देखें कि संपूर्ण मानव जीवन क्रम में किस तरह की वद्धि होती है, आइए इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करें:

(i) क्या तीव्र वद्धि (ग्रोथ) के कोई कारण हैं?

(ii) अधिकतम वद्धि कब होती है?

(iii) क्य प्रत्येक चरण पर वद्धि परिवर्तनों का तरीका बदलता रहता है?

ग्रोथ (वद्धि) वक्र इन सभी प्रश्नों के उत्तर देने में हमारी मदद करेगा। यह मूल रूप से ग्रोथ (वद्धि) की प्रतिशतता तथा उम्र (वर्ष में) के बीच सम्बद्धता को दर्शाता है।

निम्नलिखित चित्र (चित्र 11.1) से विचार अधिक स्पष्ट हो जाएगा।

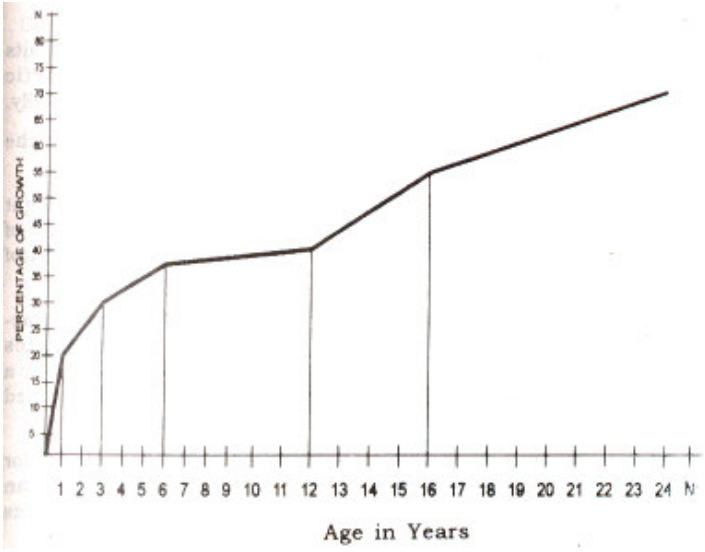

चित्र 11.1: *वद्धि वक्र*

टिप्पणी

इस चित्र में, उम्र (वर्ष में) को ग अक्ष पर तथा वद्धि (ग्रोथ) की प्रतिशतता को ल अक्ष पर दर्शाया गया है। वक्र का झुकाव प्रकति तथा वद्धि (ग्रोथ) के स्तर को इंगित करता है।

इस चित्र से यह स्पष्ट होता है कि पहले तीन वर्षों में वद्धि (ग्रोथ) बहुत तीव्र गति से हुई है और प्रथम वर्ष में अत्याधिक तेजी से वद्धि हुई है। इसके पश्चात, 5 वर्ष से लगभग 12 वर्ष के बीच वद्धि दर कम हुई है। इसे पठारीय अवस्था कहा जाता है, जिसमें बच्चा संभवतः आत्मसात करता है और पूर्व वर्षों में वद्धि के अनुभवों का अहसास करता है।

बाद में 12 से 18 वर्ष की अवधि में एक बार पुनः तीव्र वद्धि (ग्रोथ) ऊपरी चरण पर होता है जिसमें अत्यधिक तीव्र वद्धि होती है। यह अवस्था किशोरावस्था होती है तथा इस अवस्था में निरन्तर वद्धि होती रहती है, परन्तु गति धीमी होती है।

वद्धि वक्र (ग्रोथ कर्व) इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह बिना व्यवधान अथवा अनिरन्तरता तथा बिना आकस्मिक परिवर्तनों के वद्धि (ग्रोथ) की निरन्तर प्रक्रिया को इंगित करता है। दूसरा, यह मानव के संपूर्ण जीवन में वद्धि (ग्रोथ) की सतत् प्रक्रियवा को भी दर्शाता है।

इस प्रकार आपको वद्धि (ग्रोथ) वक्र से विभिन्न विकास के चरणों की किस्मों का पता चल गया होगाः

चरण	**उम्र**	**वद्धि दर**
शैशव काल	जन्म से 1 वर्ष तक	अत्यधिक तीव्र
बचपन से पूर्व	1-3 वर्ष	तीव्र
बचपन की मध्य अवस्था	3-5 वर्ष	कुछ तीव्र
बचपन के बाद की अवस्था	5-12 वर्ष	पठारीय अवस्था
किशोरावस्था	12-18 वर्ष	अत्यन्त तीव्र
वयस्क	18 वर्ष एवं इससे ऊपर	वद्धि धीरे–धीरे होती है

शैशव काल, बचपनावस्था तथा किशोरावस्था इन तीनों चरणों में अधिकतमक वद्धि होती है। इन चरणों के दौरान अर्जित की गई निपुणता की प्रकति से यह साबित होता है।

शैशवकाल तथा पूर्व बचपनावस्था में भाषा की पकड़ और ज्ञानात्मक निपुणता में असाधारण मनःचालित विकास होता है।

किशोरावस्था के दौरान, तीव्र गति से शारीरिक बदलाव होता है, यौन–चालक कार्य करना शुरू कर देते हैं, ज्ञानात्मक और सामाजिक निपुणता में सुधार हो जाता है और सामान्यतः सभी मानव क्षमताओं में वद्धि हो जाती है।

संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि वद्धि वक्र (ग्रोथ कर्व) विकास के विभिन्न चरणों में होने वाले परिवर्तनों को समझने तथा उनकी संभावना का अनुमाल लगाने में हमारी

सहायता करता है। इस प्रकार हम उनको अच्छी तरह समायोजित तथा अनुकूलित कर सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 11.1

1 प्रत्येक कथन के सामने सत्य और असत्य लिखें:

(i) परिपक्वता तथा सीखना दो अलग–अलग प्रक्रियाएं हैं और इनमें आपस में कोई संबंध नहीं होता।

(ii) पूर्ण विकास की ऊपरी सीमा का निर्धारण जींस करते हैं।

(iii) सभी परिवर्तन, जो कि विकास के परिणामस्वरूप होते हैं, एक समान होते हैं।

(iv) वद्धि वक्र (ग्रोथ वर्क) के अनुसार, वद्धि एक सतत् प्रक्रिया है।

(v) पूर्व बचपनावस्था तथा किशोरावस्था दोनों काल में अधिकतम वद्धि होती है।

(vi) वयस्क अवस्था के दौरान वद्धि रुक जाती है।

2. वद्धि वक्र (ग्रोथ कर्व) क्यों महत्वपूर्ण है? दो कारण बताएं।

11.4 विकास के सिद्धान्त

बहरहाल, सभी व्यक्तियों का विकास एवं वद्धि उनके स्वयं के तौर–तरीकों तथा उनके अपने संदर्भ के आधार पर होता है। यहां पर कुछ मूल सिद्धान्त हैं जिसके कारण विकास की प्रक्रिया होती है और सभी मानव जाति में इसे देखा जा सकता है। इन्हें विकास का सिद्धान्त कहा जाता है। आइए अब हम इसका उल्लेख करें।

1. विकास पद्धति का अनुसरण

सभी मानव जाति में, विकास सुव्यवस्थित, सुसंगठित तथा प्रतिरूप तरीके के तौर पर होता है। प्रत्येक प्रजातियों की विशिष्ट पद्धति होती है जिसका कि उसके सभी सदस्य अनुसरण करते हैं। विकास का क्रम भी एक समान होता है। उदाहरणार्थ, सभी बच्चे मुड़ना, रेंगना, खड़ा होना और तत्पश्चात् चलना सीखते हैं। वे एक विशेष अवस्था में पहुंचते हैं, परन्तु उनका श्रम अथवा तरीका एक समान ही रहेगा।

व्याकरण का अध्ययन करते समय क्रिया से पहले सदैव संज्ञा के बारे में सीख जाता है। कुछ बच्चे एक–साथ सीख जाते हैं परन्तु बिना संज्ञा की जानकारी के क्रियाओं के बारे में नहीं सीखा जा सकता। भावी विकास प्रत्येक स्तर पर चरणाबद्ध श्रंखला का परिणाम होता है जिसमें एक स्थिति पूर्व में गुजर चुकी है तथा एक बाद में घटित होगी।

टिप्पणी

उदाहरणार्थ, एक बच्चा पहले बड़ा होना सीखता है, फिर वह चलने फिरने लगता है और स्थाई दांत से पहले बच्चे के दांत निकलते हैं।

क्या यह शारीरिक, व्यावहारिक अथवा वाणी संबंधी पहलू है कि विकास सुव्यवस्थित तौर पर होता है। उदाहरणार्थ, जल्दी विकास शीर्ष से आरम्भ होता है अर्थात् शीर्ष से अथवा ऊपरी क्षेत्र से निचले (पुच्छीय) अथवा टेल क्षेत्र तक। दूसरा सिद्धान्त यह है कि वद्धि (ग्रोथ) शरीर के केन्द्रीय अक्ष से बिल्कुल शीर्ष अथवा शीर्षस्थ क्षेत्र की ओर होता है। गति अथवा विकास के द्वारा सामान्य पद्धति को नहीं बदला जा सकता, सभी बच्चे लगभग एक समय पर एक समान मौलिक आधारों से गुजरते हैं।

2. सामान्य से विशेष (ग्लोबल से विश्लेषणात्मक) की ओर विकास की शुरूआत

बच्चे की प्रतिक्रियायें चाहे वह गतिवाही अथवा मानसिक हों विशिष्ट या अनेकीकत होने से पूर्व सामान्य प्रकार की होती हैं। उदाहरणार्थ, एक नवजात शिशु पहले एक समय में अपने संपूर्ण शरीर को घुमाता है और तत्पश्चात अपने शरीर के विशेष भाग को गतिमान करना सीखता है। इस प्रकार यदि एक बच्चे के पास कोई खिलौना रखते हैं तो वह अपने संपूर्ण शरीर को खिलौना लेने के लिए गतिमान करता है और उसे पकड़ता है। और बड़ा बच्चा अपने हाथ को बाहर निकालता है क्योंकि उसे पता होता है कि विशेष गति के द्वारा ही उसका उद्देश्य पूरा हो जाएगा।

बोलने में शब्द कहने से पहले बच्चा जब आवाज निकालता है तो उसे कोलाहल कहते हैं। इसी प्रकार, सभी खेलने की वस्तुएं विशेष नामों के सीखने से पहले ''खिलौने'' होती हैं। हमारे दिन प्रतिदिन की जिन्दगी में बच्चों का निरीक्षण यह दर्शाता है कि वे पहले साधारण कार्य करते हैं और कुछ समय बाद वे जटिल क्रियायें करने लगते हैं।

3. विकास से समाकलन होता है

एक बार जब बच्चा विशेष अथवा अलग–अलग प्रतिक्रियाओं को सीख लेता है, तब चूंकि विकास निरन्तर होता रहता है, वह इन विशिष्ट प्रतिक्रियाओं को संपूर्ण रूप में संश्लेषित अथवा समाकलित कर सकता है। उदाहरणार्थ, प्रारभं में एक बच्चा एक तथा छोटे–छोटे शब्दों को बोलना सीखता है। बाद में, वह भाषा के रूप में इन वाक्यों को साथ–साथ मिलाकर बोल सकता है। इसी प्रकार, एक अवयस्क बच्चे के मस्तिष्क में कार के लिए विशेष अवधारणा होती है। बाद में, जैसे–जैसे वह विकास (वद्धि) करता है तो उसकी अवधारणा व्यापक हो जाती है क्योंकि वह नए पहलुओं को आत्मसात करने में समर्थ हो जाता है।

4. विकास की निरन्तरता

शारीरिक, बौद्धित अथवा वाणी का विकास अचानक ही नहीं होता। इसका विकास धीरे–धीरे, नियमित गति से होता है। बद्धि (ग्रोथ) बच्चे के गर्भ में आने के समय से आरंभ

होती है और जोकि परिपक्वता (वयस्कता) की अवस्था तक निरन्तर चलती रहती है। शारीरिक तथा बौद्धिक गुणों का विकास निरन्तर रूप में तब तक होता रहता है जब तक कि वह वद्धि (ग्रोथ) के चरम बिन्दु तक नहीं पहुंच जाते। बद्धि तब तक लगातार चलती रही है जब तक कि उनमें ''झटके तथा रुकावटें'' नहीं आतीं। यह विकास की निरन्तरता की प्रकति है जिसके कारण एक चरण से वद्धि (ग्रोथ) शुरू होती है और अगले चरण की ओर विकास होता है। उदाहरणार्थ, यदि एक बच्चा अपनी विशिष्ट आयु सीमा में एक विशेष कार्य को करने में निपुण नहीं होता, तब यह उसके अगले चरण के विकास कार्य को प्रभावित करेगा। शैशवकाल में खराब वातावरण के कारण भावनात्मक तनाव बाद में बच्चे के व्यक्तित्व को प्रभावित कर सकता है। इसी प्रकार, शिशु अवस्था में उपयुक्त पौष्टिक भोजन देने में लापरवाही से बच्चों का शारीरिक और मनोवैज्ञानिक रूप से विकास नहीं हा पाता जिससे बाद में विकास रूक सकता है।

5. व्यक्ति विशेष पर विकास दर की विभिन्नता

बहरहाल, सभी तरह के विकास सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित रूप से होते हैं लेकिन जिस गति से विकास होता है वह व्यक्ति विशेष पर अलग–अलग होता है। उदाहरणार्थ, एक 3 वर्ष का बच्चा अंग्रेजी की वर्णमाला को पहचान सकता है जबकि दूसरा 5 वर्ष का बच्चा ऐसा करने में सक्षम नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह है कि 3 वर्ष का बच्चा काफी तेज है अथवा 5 वर्ष का बच्चा पिछड़ा हुआ है। साधारण शब्दों में यह कह सकते हैं कि निपुणता को अर्जित करने अथवा उसमें परिपूर्णता हासिल करने की दर बच्चे–बच्चे में अलग–अलग होती है। इस वास्तविकता को प्रमाणित करने के अनुक्रम में, विकास की सीमा (रेन्ज ऑफ डेवलपमेन्ट) की अवधारणा शुरू की गई है। वर्णमाला सीखने की रेन्ज, उदाहरणार्थ, है कि बच्चा 3-5$^{1/2}$ वर्षों में किसी भी समय सीख जाता है। इस आयु सीमा के भीतर आने वाले सभी बच्चे सामान्य रूप में समझे जाते हैं। विकास की दर में विभिन्नता अनेक क्षेत्रों, जैसे दांत निकलने, जिस उम्र में बच्चा बैठने, बड़ा होने, चलने–फिरने तरुण अवस्था आदि के समय, में देखा जा सकता है।

6. शरीर के विभिन्न भागों का विकास विभिन्न दरों पर होना

न तो शरीर के विभिन्न भागों का विकास एक समान दर से होता है और न ही बौद्धिक विकास एक समान दर से होता है। शारीरिक अथवा बौद्धिक विकास के विभिन्न घटकों में वद्धि विभिन्न दरों पर होता है और अलग–अलग समय पर परिपक्वता की अवस्था में पहुंचते हैं। कुछ क्षेत्रों में, शरीर का विकास त्वरित गति से होता है, जबकि दूसरे का विकास धीमी गति से होता है। इस प्रकार, शरीर के अंगों का आकार समय–समय पर बदलता रहता है और वद्धि (ग्रोथ) में इन असमानताओं के कारण शरीर वयस्क लगने लगता है।

विकास के सभी क्षेत्र आरंभिक अवस्था में सह–सम्बन्धित होते हैं। एक बच्चा जिसका बौद्धक विकास औसत से अधिक है तो वह सामान्यतः आकार में, ज्यादा सामाजिक

टिप्पणी

योग्यता तथा विशेष रुचियों में भी औसत से अधिक होता है। इससे स्पष्ट होता है कि बच्चे का बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक तथा भावनात्मक विकास एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। एक शर्मीला बच्चा स्कूल की गतिविधियों में भाग लेने में समर्थ नहीं होगा। एक विकलांग बच्चे को मित्र बनाने में कठिनाई हो सकती है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कैसे विकास का एक घटक दूसरे को प्रभावित करता है।

क्या आप जानते हैं

विभिन्न अंगों की लम्बाई, वजन तथा विकास विभिन्न समयों पर पूर्ण रूप से होता है। उदाहरणार्थ, अनुसंधान अध्ययनों से पता चलता है किः

– लगभग छः से आठ वर्ष की आयु में मस्तिष्क परिपक्व होते हैं;

– किशोरावस्था के दौरान पैर, हाथ तथा नाक का अधिकतम विकास होता है।

– किशोरावस्था के दौरान दिल, लीवर, पाचन प्रणाली आदि का विकास होता है।

किशोरावस्था के पश्चात्, विकास का कोई भी एक क्षेत्र दूसरे को विकास की ओर ले जाता है और स्वतन्त्र रूप से विकसित होता है। वैज्ञानिकों के मामले में, उदहारणार्थ, ज्ञानात्मक विकास अन्य क्षेत्रों में पहले घटित होता है। धावक के मामले में शारीरिक विकास अन्य क्षेत्रों से पहले घटित होगा।

7. विकास अहंकेन्द्रवाद से परकेन्द्रवाद की ओर होता है

इसका अर्थ है कि प्रारंभ में बच्चा बहुत ही आत्म केन्द्रित होता है और वह दूसरे के बारे में नहीं सोचता। उसकी आवश्यकताएं और इच्छाएं उतनी ही होती हैं जितनी कि उसे जानकारी है। वह यह भी नहीं समझता कि उसके माता–पिता क्या सोचते अथवा महसूस करते हैं। उदाहरणार्थ, एक दो वर्ष का बच्चा आधी रात में चाकलेट खाने के लिये रोता व चिल्लाता है तब वह यह समझ नहीं पाता है कि उसकी मांग इसलिए पूरी नहीं की जा सकती क्योंकि इस समय बाजार बन्द है। जब वह बड़ा हो जाता है, तब, वह इस अहंकेन्द्रवाद से परकेन्द्रवाद अथवा ''अन्य उन्मोषी'' अथवा दूसरों के बारे में सोचने लगता है। एक दस साल के बच्चे की भी दो साल के बच्चे के समान ही इच्छा होती है परन्तु वह असंभावी मांग नहीं करता क्योंकि वह नहीं चाहेगा कि उसके माता–पिता को परेशानी हो।

8. विकास परतंत्रता से स्वतंत्रता की ओर ले जाता है

परतंत्रता का अर्थ दूसरों पर आश्रित रहने से है, जबकि स्वतंत्रता का अर्थ स्व निर्भरता से है। छोटे बच्चे अपनी देखभाल और कल्याण के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं, परन्तु

वयस्क बच्चे स्वयं की देखभाल करने में सश्रम होते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि विकास की गति परतंत्रता से स्वतंत्रता की ओर होती है।

जब एक छोटे बच्चे को भूख लगती है तो वह अपनी मां की प्रतीक्षा करता है कि वह से खाना देगी। दूसरी ओर एक किशारे (वयस्क) बच्चा स्वयं अपने लिए खाना ले सकता है।

9. विकास भविष्य सूचक (प्रेडिक्टेबल) है

जैसा कि विकास के पूर्व सिद्धान्तों में चर्चा की गई है कि प्रत्येक बच्चे के लिए विकास की दर समान रूप से स्थिर होती है। यह इंगित करता है कि इससे यह संभव होता है कि भविष्य में बच्चों के विकास के स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है और कितने अंश पर विशेषकर लम्बाई, वजन, ज्ञानात्मक योग्यता आदि का विकास होगा।

11.4.1 विकास के सिद्धान्तों की जानकारी क्यों महत्वपूर्ण है?

1. इससे हमें यह जानने में मदद मिलती है कि क्या अपेक्षा करते हैं और कब इसकी अपेक्षा है। यह एक विशेष आयु में बच्चे की योग्यता के बारे में सटीक चित्र प्रस्तुत करता है।
2. यह हमें सूचित करता है कि बच्चे में कब विकास होगा और कब विकास नहीं होगा अर्थात यह हमें विकास के लिए अवसरों को उपलब्ध कराने अथवा परिपक्वता की प्रतीक्षा करने के लिए प्रेरित करता है।
3. यह माता–पिता, अध्यापकों तथा बच्चे के साथ कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियों को बच्चों के व्यापक विकास से पूर्व तैयारी के लिए सहायता करता है तथा बच्चों की रुचियों एवं व्यवहारों को बदलता है। यह अध्यापकों को बताता है कि क्या पढ़ाना है, कब बढ़ाना है और कैसे पढ़ाना है।

इस प्रकार विकास के सिद्धान्त हमे विकास के विभिन्न चरणों को समझने के लिए आधार प्रदान करते हैं जो कि व्यक्तियों में अलग–अलग होता है। बहरहाल, शरीर के भीतर और बाहर कतिपय स्थितियों द्वारा विकास की पद्धति एवं दर में परिवर्तन हो सकता है। कतिपय कारक जैसे पोषण, यौन, बुद्धि, चोट तथा बीमारी, दौड़ने, संस्कति आदि भी इन विभिन्नताओं को उत्पन्न करते हैं।

पाठगत प्रश्न 11.2

कपया एक (टी/एफ) चिन्ह लगाएं और अपने उत्तर की जांच करें। यदि पांच से अधिक उत्तर गलत होते हैं तो इकाई को पुनः याद करें और उसकी पुनः जांच करें।

1. वद्धि (ग्रोथ) अनियमित तथा अव्यवस्थित तरीके से होता है।
2. एक औसत से कम बौद्धिक विकास वाला बच्चा अच्छे स्वास्थ्य, सामाजिक तथा शारीरिक संरचनाओं से युक्त होता है।

3. एक क्षेत्र में औसत से अधिक गुणों वाला बच्चा दूसरों की अपेक्षा औसत से कम होगा क्योंकि विकास परिहार का सामान्य नियम है।
4. बच्चों में विकास का प्रक्रम भली प्रकार स्थिर होता है।
5. गुणों में आयु के आधार पर विशिष्टता प्राप्त करते हैं इसलिये विकास क्रमिक होता है।
6. सामान्य विशेषताओं के विकसित होने से पहले बच्चा विशिष्ट कौशल प्रदर्शित करता हैं।
7. बच्चों का विकास होने पर वे आत्म विश्वासी हो जाते हैं।
8. एक बच्चे और वयस्क व्यक्ति के बीच मुख्य अन्तर यह है कि पहले वे आत्म केन्द्रित होते हैं और बाद में परकेन्द्रित हो जाते हैं।
9. बच्चा छोटी वस्तुओं पर ध्यान करने से पहले बड़ी वस्तुओं को देखता है।
10. विकास निरन्तर होने के कारण प्रथम चरण में जो कुछ भी घटित होता है अगले चरण तक जाता है तथा उसे प्रभावित करता है।
11. प्रत्येक व्यक्ति साधारणतः विकास के हर प्रमुख चरण से होकर गुजरता हैं।

11.5 विकास अध्ययन के लिए दष्टिकोण

विकास की प्रकति तथा प्रमुख सिद्धान्तों पर चर्चा करने के पश्चात्, हम अब कुछ दष्टिकोणों का परीक्षण करेंगे जिसमें मानव जाति के विकास के अध्ययन के लिए अनुसंधानकर्ताओं को लगाया गया है। उनकी सीमाओं तथा सुदढ़ताओं के साथ मानव जाति के विकास के अध्ययन के लिए दो मुख्य दष्टिकोण पर चर्चा की गई है। इन दष्टिकोणों को औजारी की वैरायटी के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जैसे साक्षात्कार अनुसूची, प्रश्नावलियां, निर्धारण पैमाना, उपाख्यान, आत्मकथायें आदि। विकास के दो मुख्य एप्रोचों का अध्ययन इस प्रकार है–

1. प्रतिनिध्यात्मक दष्टिकोण
2. अनुदैर्घ्य दष्टिकोण

1. प्रतिनिध्यात्मक दष्टिकोण

यह अध्ययन विभिन्न आयु वाले कुछ प्रतिनिधि बच्चों पर समान समय पर किया जाता है। सामान्यतः प्रत्येक बच्चे के लिए केवल एक निरीक्षण किया जाता है और अध्ययन में विभिन्न आयु वाले बच्चे को शामिल करके विकासात्मक परिवर्तनों की पहचान की जाती है।

उदाहरणार्थ, एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष और अधिक आयु वाले बच्चों के प्रतिनिधि के कार्य निष्पादन का तुलनात्मक अध्ययन करके उनकी बौद्धिक योग्यता में परिवर्तन की जांच की जा सकती है। इस दष्टिकोण के निम्नलिखित लाभ हैं:

- लम्बी अवधि के अध्ययनों में यह प्रतिदर्श शक्ति की हानि को रोकता है।
- यह कम खर्चीला, समय की बचत करने वाला तथा अभिलेख के रख–रखाव में सुविधाजनक है।
- यह व्यावहारिक है।

बहरहाल, इस दष्टिकोण की कतिपय हानियां भी हैं, जो कि इस प्रकार हैंः

- व्यक्ति की समग्रता तथा वैयक्तिकता नहीं रहती।
- प्रतिदर्श में व्यक्ति के अध्ययन में विकासात्मक निरन्तरता की हानि होती है।

2. अनुदैर्घ्य दष्टिकोण

जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है कि पूर्वर्ती दष्टिकोण की तुलना में यह विकास का लम्बाई के आधार पर अध्ययन है। यह दष्टिकोण समान व्यक्ति के अध्ययन पर बल देता है।

इस प्रकार यदि नवजात शिशुओं का प्रतिदर्श बनाया जाता है तो वे इनफैन्सी, अर्लीचाइल्डहुड, लेट चाइल्डहुड आदि के माध्यम से देखते हैं। विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए, अनेक पद्धतियों का इस्तेमाल किया जाता है। प्याजे इतिहास विधि एक ऐसी विधि का उदाहरण है जो कि लम्बे समय तक होने वाले व्यवहार का अध्ययन करती है। अपनी पुत्री पर आंख व हाथ के समन्वय के अध्ययन की पइगेट अध्ययन अनुदैर्घ्य दष्टिकोण का एक प्रसिद्ध उदाहरण है।

अनुदैर्घ्य दष्टिकोण यह देखने का सबसे अच्छा तरीका है कि वद्धि कैसे होती है?, इसमें कुछ कमियां हैं, जो कि निम्नलिखित हैः–

- दीर्घावधि के लिए बड़े प्रतिदर्श से संपर्क बनाए रखने में कठिनाइयां आती हैं।
- इसमें ज्यादा समय लगता है और खर्चीला भी है।
- सब्जेक्ट पर परीक्षणों को बार बार सम्पादित किया जाता है जिससे अंक प्रभावित होते हैं।

पाठगत प्रश्न ११.३

दी गई समस्याओं को पढ़ें और उनके अध्ययन के लिए उपयुक्त एप्रोच का उल्लेख करेंः

1. क्या गर्भस्थ शिशु में उत्साही तथा शिशु अवस्था में जिद्दी होने जैसे लक्षणें का परीक्षण किया जा सकेगा?
2. क्या विभिन्न आयुवर्ग के बच्चे भूतों वाली फिल्म देखने पर समान भावनात्मक प्रतिक्रिया करते हैं।

टिप्पणी

3. क्या विभिन्न संस्कतियों में पले–बढ़े ५ वर्ष वाले बच्चों में समान बौद्धिक योग्यताएं दिखेंगी।
4. आंख–हाथ समन्वय पद्धति के परीक्षण के लिए किस उम्र के बच्चों का परीक्षण होना चाहिए।
5. पूर्व किशोरावस्था के दौरान समायोजन माता–पिता से वंचित होने के प्रभाव का अध्ययन।
6. जन्म से पांच वर्ष की उम्र वाले बच्चों की सामाजिक प्रतिक्रिया का अध्ययन।

आपने क्या सीखा

- विकास में प्रगतिशीलता, संगतता तथा क्रमिक परिवर्तन सन्निहित होते हैं। परिवर्तन एक निश्चित दिशा से आगे की ओर होता है। होने वाले परिवर्तन प्रकति में अव्यवस्थित नहीं होते।
- विकास दो मुख्य प्रक्रियाओं जैसे परिपक्वता और सीखने की प्रवत्ति के माध्यम से होता है।
- वद्धि (ग्रोथ) वक्र विकास की अवस्था में परिवर्तनों अधिकतम वद्धि की अवधि तथा वद्धि के तरीके में परिवर्तन का पता लगाने में हमारी सहायता करता है।

विकास के सिद्धान्त निम्नलिखित हैंः

- यह (पैटर्न) पद्धति का अनुसरण करता है।
- यह सामान्य से विशेष्ज्ञ की ओर आरंभ होता है।
- विकास निरन्तर होता है।

- विकास की दर व्यक्तियों में अलग–अलग होती हे।
- विकास समाकलन के लिए मार्गदर्शक है।
- विकास की दरें विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न होती है।
- विकास के अध्ययन के दष्टिकोण निम्नलिखित हैंः

  (i) प्रतिनिध्यात्मक

  (ii) अनुदैर्घ्य

पाठान्त प्रश्न

1. विकास शब्द की व्याख्या करें।
2. वे दो मुख्य प्रक्रियाएं क्या हैं जिससे विकास होता है?

3. विकास के मुख्य सिद्धान्तों को संक्षिप्त में बताएं। उनमें से किन्हीं तीन के विषय में उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
4. विकास के सिद्धान्तों का ज्ञान कैसे सहायक होता है?
5. निम्नलिखित में अन्तर बताएं:
   (i) परिपक्वता एवं सीखना
   (ii) प्रतिनिध्यात्मक तथा अनुदैर्घ्यात्मक दष्टिकोण
   (iii) आत्मकेन्द्रित (इगो–सेन्ट्रिज्म) तथा परकेन्द्रित
   (iv) परतन्त्रता (हीट्रोगॉमी) और स्वायत्ता (ऑटोनामी)

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

11.1 (i) असत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) सत्य
(v) सत्य (vi) असत्य

11.2 1. असत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. सत्य
6. असत्य 7. सत्य 8. सत्य 9. सत्य 10. सत्य

11.3 1. लांग 2. क्रास 3. क्रास 4. क्रास 5. लांग
6. लांग

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. अनुच्छेद 11.1.1 को देखें
2. अनुच्छेद 11.1 को देखें
3. अनुच्छेद 11.4 को देखें
4. अनुच्छेद 11.4 को देखें
5.

(i) अनुच्छेद 11.2 को देखें
(ii) अनुच्छेद 11.5 को देखें
(iii) अनुच्छेद 11.4 (5) को देखें
(iv) अनुच्छेद 11.4 (7) को देखें

12

विकास के क्षेत्र

जब हम बच्चे को देखते हैं तो हमें अक्सर अपना बचपन याद आने लगता है।

क्या आप उन दिनों तथा गतिविधियों को याद कर सकते हैं जबकि आप एक बच्चे के रूप में थे?

क्या आप वह सब कुछ पुनः स्मरण कर सकते हैं, जो आपने किया था?

हम सब बहुत ज्यादा खेले और दौड़े होंगे, जबकि, अब बड़े हो जाने पर हमारी गतिविधियों में परिपक्वता आ गई है और व्यवहार भी अलग तरीके के हो गए हैं। परिवार में हम देख सकते हैं कि हमारे माता–पिता अलग तरीके का व्यवहार करते हैं क्योंकि वे हम से अधिक परिपक्व हैं। क्योंकि यह हमारे जीवन में अलग–अलग समय में होता है जिसे चरण (स्टेज) कहते हैं। मानव जीवन विभिन्न चरणों से गुज़रता है। इस पाठ में आप मानव जीवन के विभिन्न चरणों में होने वाले विकास का अध्ययन करेंगे और उसके बारे में सीखेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप सक्षम होंगेः

- विकासात्मक कार्य क्या है का वर्णन करने में;
- मानव जीवन में विकास के चरणों की पहचान करने में;
- प्रत्येक चरण में विकास के मुख्य लक्षणों की सूची बनाने में;
- यौवनारंभ के पश्चात् बालक और बालिकाओं के बीच अन्तर की व्याख्या करने में; और
- मनःकामिक विकास संबंधी फ्रायड के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करने में।

12.1 विकासात्मक कार्य

मानव जीवन चरणों में बढ़ता है। उदाहरणार्थ, बाल्यावस्था एक चरण है। कुछ अंश तक विकास होने पर बच्चा किशोरावस्था की ओर बढ़ जाता है। प्रत्येक चरण एक प्रमुख विशेषता द्वारा चित्रित किया गया है, एक विशिष्ट लक्षण जो उस अवस्था को अद्वितीयता प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, एक बच्चे से अपेक्षा की जाती है कि वह स्कूल जाए और अध्ययन करे और एक वयस्क से अपेक्षा होती है कि वह कार्य करे और परिवार का पालन करे। इन अवस्थाओं में कतिपय विशेषताएं अन्यों की अपेक्षा अत्यधिक सुस्पष्ट होती हैं और प्रत्येक अवस्था को चरण कहा जाता है। लोग अमुक चरण पर अधिक सुगमता से और सफलतापूर्वक कुछ व्यवहार–प्रतिमान तथा कुशलताएं सीख जाते हैं और जो सामाजिक अपेक्षा बन जाते हैं। उदाहरणार्थ, एक पिता से परिवार को चलाने और बच्चे से पढ़ने और स्कूल जाने की अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार सभी व्यक्तियों की विशेष आयु में सामाजिक अपेक्षायें समान हो जाती हैं, जिसे ''विकासात्मक कार्य'' के रूप में जाना जाता है।

विकासात्मक कार्य विशेष आयु की सामाजिक अपेक्षायें हैं। हैविघर्ष्ट सर्वप्रथम विकासात्मक मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने विभिन्न आयु वर्गों के विकासात्मक कार्यों की पहचान की। विभिन्न चरणों मे विकासात्मक कार्य इस प्रकार हैं:

जन्म से 6 वर्ष	**6-12 वर्ष तक विकासात्मक कार्य**	**किशोरावस्था**
1. चलना–फिरना सीखना	1. साधारण खेलों के लिए शारीरिक कुशलताओं को सीखना	किशोरावस्था के विकासात्मक कार्य अध्याय 15 में दिए गए हैं।
2. ठोस भोजन लेना	अपनी उम्र के दोस्तों के साथ रहना सीखना	
3. बातचीत करना	लिंग की भूमिका के बारे में सीखना	
4. मल–मूत्र त्याग करना	पढ़ने लिखने तथा गणना करने संबंधी बेसिक कुशलताओं मे विकास	
5. लिंगों के बीच अन्तर सीखना	दैनिन्दिन जीवन के लिए आवश्यक प्रत्ययों का विकास	
6. सही और गलत के बीच अन्तर सीखना	दैनिक क्रिया–कलापों में स्वतंत्रता का विकास	
	नैतिकता तथा मूल्यों का विकास	

टिप्पणी

स्वयं प्रयास करें

अपने परिवार के सदस्यों के नाम लिखें और उनमें विभिन्न चरणों (स्टेज) की पहचान करें।

12.2 विकास के चरण

आपने पढ़ा कि विकास के दौरान विभिन्न अवधियां विभिन्न चरणों द्वारा चिन्हित होती हैं। सभी बच्चों की प्रगति इन चरणों के माध्यम से निश्चित क्रम में होती है और वे सभी समान बेसिक प्रतिमानों का अनुसरण करते हैं। विकासात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा बच्चे के अनुरूप उम्र के साथ इन चरणों की पहचान इस प्रकार की गई है:

चरण	समय सीमा
जन्म पूर्व (गर्भस्थ)	गर्भधारण सो जन्म तक
पूर्व शैशव	0-1 वर्ष
शैशवास्था	1-3 वर्ष
पूर्व बाल्यावस्था	3-6 वर्ष
बाल्यावस्था	6-12 वर्ष
किशोरावस्था	12-20 वर्ष
युवावस्था	20-30 वर्ष
प्रौढ़ावस्था	30-50 वर्ष
परिपक्व प्रौढ़	50-65 वर्ष
आयुगत प्रौढ़	65+

1. जन्म से पूर्व की अवधि (प्रीनैटल स्टेज) गर्भस्था

गर्भ धारण के समय में जीवन शुरू हो जाता है। जब तक बच्चा मां के गर्भ में होता है तो उस विशेष अवधि को जन्म से पूर्व की अवधि (गर्भस्था) के रूप में जाना जाता है। सभी महत्वपूर्ण बाहरी तथा आन्तरिक अनुभूतियां इस अवस्था में विकसित होनी शुरू हो जाती हैं।

2. शैशव (इनफैन्सी) 0 से 3 वर्ष

जन्म से लेकर तीन वर्ष तक की अवधि को शैशव (इनफैन्सी) अवधि के रूप में जाना जाता है। पहले तीन वर्षों के दौरान बच्चों का आकार बहुत तीव्र गति से विकसित होता है। गतिक निपुणताएं जैसे चीजों को पकड़ना, रेंगना, चलना शुरू करना आदि गुण इस उम्र के बच्चों में आ जाते हैं।

3. पूर्व बाल्यावस्था (3-6 वर्ष)

इस अवस्था के दौरान लम्बाई तीव्र गति से नहीं बढ़ती जैसा कि शैशवकाल में बढ़ती है। बच्चों के आंख, हाथ तथा छोटी मांसपेशियों के समन्वय में सुधार होता है। उदाहरणार्थ वे वत्त खींच सकते हैं, वे कटोरी में तरल पदार्थ डाल सकते हैं तथा बटन लगे हुए तथा बिना बटन वाले कपड़े पहन सकते हैं तथा भाषा में त्वरित विकास होता है।

4. बाल्यावस्था (6-12 वर्ष प्राथमिक स्कूल वर्ष)

6-12 वर्ष की उम्र के बीच वाले बच्चे अधिक लम्बे और पतले दिखते हैं। इस उम्र के बच्चों की मजबूती एवं चुस्ती फुर्ती में तीव्रता से विकास होता है। वे नई गतिक–कुशलता प्राप्त करते हैं तथा उनकी सक्षमता विकास के सभी क्षेत्रों में अत्यधिक सुदढ़ होती है।

5. किशोरावस्था (12-20 वर्ष)

यह बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के बीच की अवधि होती है जिससे यौवनारंभ होता है। यह वह अवधि है जिसमें तीव्र गति से मनोवैज्ञानिक विकास होता है। इस अवधि में अनेक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं। इस अवधि में बच्चे रस्सी कूद सकते हैं, साइकिल चला सकते हैं, घुड़सवारी तथा नत्य कर सकते हैं और सभी संभव खेलों में भाग ले सकते हैं। संज्ञानात्मक रूप में वे अधिक सक्रिय होते हैं और सामाजिक सम्बन्ध महत्वपूर्ण हो जाते हैं। परन्तु इस अवस्था की सबसे प्रमुख बात "अपनी पहचान" की खोज करना है। अनेक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन इस अवस्था में होते हैं। सेक्स रोल की अपेक्षाओं में, अच्छी लड़कियाँ अन्तवैयक्तिक संबंधों तथा परिवार को वरीयता देती हैं जबकि इस अवस्था के लड़कों का जोर अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और कैरियर बनाने पर अधिक होता है।

6. प्रौढ़ावस्था (20-65+ वर्ष)

अधिक बेहतर तरीके से समझने के लिए प्रौढ़ता को तीन चरणों में बांटा जा सकता है। वे इस प्रकार हैं:

(अ) युवा प्रौढ़ता (20-50 वर्ष)

(ब) परिपक्व प्रौढ़ता (50-65 वर्ष)

(स) आयुगत प्रौढ़ता (65+ वर्ष)

बीस वर्ष के मध्य से, जिस समय शरीर के अधिकांश अंग पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं, 50 वर्ष की आयु तक के जीवन में ताकत और ऊर्जा के लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसके पश्चात् धीरे–धीरे ऊर्जा के स्तर में कमी आने लगती है। इस अवस्था का वर्णन पाठ 16 में अलग से किया जाएगा।

स्वयं प्रयास करें

आपके माता–पिता तथा दूसरे भाई और बहनें घर पर रहते हैं। उनकी उम्र का पता लगाएं तथा प्रत्येक चरण के लिए ऊपर दिए गए वर्णन के अनुसार उनका वर्गीकरण करें। उनकी विशेषताओं के संबंध में सूची बनाएं। अपने माता–पिता से बात करें तथा पता करें कि संपूर्ण अवधि में उनमें कैसे बदलाव आए हैं। इस अभ्यास से आप जीवन के विभिन्न चरणों पर व्यक्तियों में विकसित होने वाली विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने में सक्षम होंगे।

पाठगत प्रश्न 12.1

उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थान भरें:

1. मानव जीवन का आरंभ ..... द्वारा होता है।
2. सामाजिक अपेक्षाओं को .....रूप में जाना जाता है।
3. बाल्यावस्था एक ..... है।
4. ..... दौरान विकास की दर सबसे अधिक होती है।
5. ..... वर्ष की उम्र के पश्चात शक्ति क्षीण होने लगती है।

12.3 विकास के पक्ष अथवा क्षेत्र

प्रत्येक चरण पर, विभिन्न क्षेत्रों में विकास एक साथ होता है। विभिन्न चरणों के दौरान संबंधित क्षेत्रों में विकास की चर्चा निम्नलिखित पक्षों के अन्तर्गत की गई है:

शारीरिक : शारीरिक विकास शरीर के विकास से संबंधित होता है अर्थात् शरीर की लम्बाई तथा भार

गतिक : गतिक विकास मांसपेशियों के विकास और समन्वय से संबंधित होता है।

संज्ञानात्मक : संज्ञानात्मक विकास का अर्थ मस्तिष्क वद्धि तथा बौद्धिक विकास से है।

भाषा : भाषा विकास बच्चों के भाषा सीखने से सम्बन्धित है। तथा किस उम्र में वे भाषा के विभिन्न घटकों के बारे में ज्ञान प्राप्त करते हैं।

व्यक्तित्व विकास : इसका अर्थ व्यक्तित्व के समग्र विकास है।

मनोसामाजिक : मनोसामाजिक विकास का तात्पर्य सांस्कतिक तथा सामाजिक प्रभावों का व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ने से है।

संवेगात्मक : संवेगात्मक विकास विभिन्न संवेगों के बारे में है कि वे संपूर्ण अवधि में कैसे बढ़ते हैं।

नैतिकः इससे यह जानकारी मिलती है कि क्या सही है और क्या गलत, इस उम्र में इस ज्ञान को अर्जित करने की जरूरत होती है तथा न्याय और दण्ड के नियमों की जानकारी भी होती है। नैतिक विकास के क्षेत्र के अन्तर्गत विवेक तथा मूल्य भी आते हैं।

व्यावसायिकः यह कैरियर के चयन के बारे में होता है तथा वे जीवन में कैसे पनपते हैं तथा उन्हें कैसे प्राप्त किया जाता है।

आइए इनमें से कुछ के बारे में अध्ययन करें:

क) शारीरिक विकास

पहले तीन वर्षों में बच्चों के आकार में तीव्र गति से वद्धि होती है। यहां तक कि उनके शरीर में कई बदलाव आते हैं। अपने दूसरे वर्ष की तुलना में पहले वर्ष में बच्चे की लम्बाई दुगुनी बढ़ती है। अधिकांश बच्चे पहले वर्ष के दौरान जन्म के समय के अपने वजन से तीन गुना बढ़ जाते हैं और इसके पश्चात् दूसरे वर्ष में इसका एक चौथाई ही वजन बढ़ता है। तीसरे वर्ष के दौरान, लम्बाई और भार दोनों में कम वद्धि होती है। पहले वर्ष के दौरान एक बच्चे का मस्तिष्क का विकास प्रौढ़ावस्था के मस्तिष्क का दो–तिहाई होता है और दूसरे वर्ष की समाप्ति तक यह चार बटे पांच ही बढ़ता है।

प्री–स्कूल वर्ष (स्कूल से पूर्व की आयु): प्री–स्कूल के दौरान बच्चों की लम्बाई शिशु अवस्था की तुलना में कम गति से बढ़ती है। यह निरन्तर प्रत्येक वर्ष 2 से 3 इंच तक बढ़ता है।

मध्य/उत्तर स्कूल बाल्यावस्थाः 6 से 12 वर्ष की आयु वाले बच्चे अपने प्री–स्कूल के भाइयों और बहनों से काफी अलग दिखते हैं। वे अधिक लम्बे और पतले हो जाते हैं। सामान्यतः लड़कियां, लड़कों की तुलना में मोटी लगती हैं और यह मोटापन प्रौढ़ता तक रहता है। छोटे लड़के सामान्यतः छोटी लड़कियो की अपेक्षा थोड़े वजनी (भारी) तथा लम्बे होते हैं। परन्तु लड़कियों में लड़कों से पहले यौवनारंभ हो जाता है तथा तेजी से बड़ी होने लगती हैं। किशोरावस्था का समय शैशवकाल तथा प्रौढ़ता के बीच का समय होता है। यह अवस्था बारह वर्ष से शुरू होकर बीस वर्ष के अन्त तक होती है। इसके शुरूआत का पता यौवनरंभ (रजस्वला) से लग जाता है। यह वह अवस्था है जिसमें तीव्र गति से दैहिक विकास होता है तथा उत्पादक प्रकार्य तथा प्राथमिक यौन अंग परिपक्व हो जाते हैं तथा तब द्वितीयक यौन विशेषताएं दिखाई देने लगती हैं। इस चरण पर पहुंचते–पहुंचते एक तीव्र वद्धि का अनुभव होता है।

20 से 50 वर्षों की आयु के समय में शक्ति (ताकत) और ऊर्जा अपनी चरमसीमा पर होती है और इस चरम सीमा से शक्ति और ऊर्जा में कमी इतनी धीमी होने लगती है जिसका

टिप्पणी

पता नहीं लगता है। 65 वर्ष की आयु के पश्चात वद्ध अवस्था में शारीरिक दुर्बलता तथा लचीलेपन में कमी आने लगती है।

पाठगत प्रश्न 12.2

1. रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्द भरें:

   (अ) दूसरे वर्ष की तुलना में पहले वर्ष की दौरान बच्चों की ..... लम्बाई तेज गति से बढ़ती है।

   (ब) अधिकांश बच्चे पहले वर्ष के दौरान अपने जन्म के समय के वजन से .... में अधिक वद्धि करते हैं और उसके पश्चात दूसरे वर्ष के दौरान केवल .. .. से कम वद्धि होती है।

   (स) लड़कों की तुलना में यौवनारंभ के दौरान लड़कियों ..... अत्यधिक विकास होता है।

   (द) विकास के विभिन्न क्षेत्र ..... हैं।

2. यह बताएं कि क्या निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य:

   (अ) मध्य बाल्यावस्था में बच्चों का विकास तेजी से होता है। सत्य/असत्य

   (ब) 10-20 वर्ष के दौरान सुदढ़ता और ऊर्जा चरमोत्कर्ष पर होता है। सत्य/असत्य

   (स) पहले वर्ष के दौरान प्रौढ़ की तुलना में एक बच्चे का दिमाग दो–तिहाई तक विकसित हो जाता है। सत्य/असत्य

   (द) किशोरावस्था के लगभग विकास तीव्र होता है। सत्य/असत्य

(ब) गतिक विकास

गतिक कुशलता प्राप्ति के लिए एक निश्चित क्रम होता है जो साधारण से जटिल की ओर चलता है। शरीर में आनुपातिक बदलाव से बच्चों के व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। जब इनमें तेजी से विकास होता है तो उनका अस्थाई रूप से अपने शरीर पर नियन्त्रण कम हो जाता है। उम्र बढ़ने के साथ–साथ उनका गतिक विकास अत्यधिक नियंत्रित दिखाई देता है। वद्धि के साथ उनके समस्त शरीर के भागों पर नियंत्रण का पता चलता है। इससे बच्चे अपने हाथों तथा अंगुलियों को अच्छी तरह से नियंत्रित कर सकते हैं अर्थात् यदि एक छोटा बच्चा बिस्कुट उठाता है तो वह अपने अनेक जोड़ो यथा कंधों तथा पूरे हाथ को चलाता है। जैसे ही वह बड़ा हो जाता है, वह केवल अपनी अंगुलियों का ही प्रयोग उन बिस्कुटों को उठाने के लिए करता है। जब वे विभिन्न तरह की गतियों पर नियंत्रण कर लेते हैं तो वे इस प्रकार चलने–फिरने लगते हैं।

ये कुशलताएं एक विशेष उम्र में हासिल होती हैं और इसे विकास के पड़ाव या मील के पत्थर के नाम से जाना जाता है।

गतिक (मोटर) विकास के कुछ पड़ाव–

सिर नियंत्रण	1 माह
बिना सहारे के बैठना	7 माह
लुढ़कना	5 माह के लगभग
चलने के पूर्व की गति	लगभग 9 से 10 माह (रेंगना)
खड़ा होना	13 से 14 महीने में अकेले खड़े होने लगते हैं।
चलना–फिरना	सहारे के साथ 9-11 महीना, अकेले चलना 15 महीने में
ऊपर चढ़ना	सहारे के साथ 18 महीने में
कूदना	20 महीने में
हेरा–फेरी	15 महीने में

प्री–स्कूल वाले बच्चे: तीन वर्ष की आयु वाले बच्चे आंख, हाथ तथा छोटी मांसपेशियों में समन्वय करने लगते हैं। वे वत्त खींच सकते हैं, कटोरे में पानी डाल सकते हैं, बटन और बिना बटन वाले कपड़े पहन सकते हैं, लाइन पर कट लगा सकते हैं; डिजाइन बना सकते हैं तथा कागज को मोड़ सकते हैं। 5 वर्ष की आयु वाले बच्चे सुतली में अच्छी तरह से मोतियां डाल सकते हैं; पेन्सिल को कसकर पकड़ सकते हैं तथा उसको समुचित रूप से नियंत्रित भी कर सकते हैं; वर्गाकार आदि चित्रों की नकल कर सकते हैं।

स्कूल जाने वाले बच्चे में गतिक कुशलताएं आ जाने के कारण उनमें मजबूती, तीव्रता तथा अच्छा समन्वय दिखाई पड़ता है। वे रस्सी कूदने, साइकिल चलाने, नत्य करने तथा सभी संभव खेल खेलने में सक्षम होते हैं। इस चरण पर लड़कों तथा लड़कियों की योग्यताओं में अन्तर देखने को मिलता है। लड़कों के कार्य निष्पादन की क्षमता 5 से 17 वर्ष की आयु में सुधरती है। दूसरी ओर लड़कियों में सुधार पूर्व स्कूल अवधि में आ जाता है। लड़कियों का कार्य निष्पादन 13 वर्ष की आयु में अधिक होता है, और कुछ योग्यताएं कम होने लगती हैं अथवा स्थिर रहती हैं। क्योंकि उनमें लड़कपन चला जाता है तथा नारीत्व की लिंग–रूढ़ि प्रवत्ति आ जाती है।

युवा–प्रौढ़ावस्था (नव–वयस्कता) से मध्य की आयु में पहुंचते पहुंचते, जैविक परिवर्तन बहुत धीमे होते हैं और 50-55 वर्ष की आयु में ये परिवर्तन बहुत ही कम नजर आते हैं। इस चरण पर पहुंचते ही वे अधिक कार्य नहीं कर सकते जैसा कि वे पहले करते थे। इस आयु में संवेदनशील योग्यताओं तथा शारीरिक सुदढ़ता तथा समन्वय में भी थोड़ी कमी आने लगती है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 12.3

1. विकास में पड़ाव/मील के पत्थर क्या होते हैं?
2. बताएं कि क्या नीचे दिए गए कथन सत्य हैं अथवा असत्य हैं:
   (अ) विकास में विभेदन के बाद गति का समेकन जटिल व्यवहारों में हो जाता है। सत्य/असत्य
   (ब) 4 माह की आयु वाले बच्चे स्वतंत्र रूप से बैठना आरंभ कर देते हैं। सत्य/असत्य
   (स) 2 वर्ष की आयु वाले बच्चे चलना शुरू कर देते हैं। सत्य/असत्य
   (द) 28 सप्ताह की आयु वाले बच्चे प्रहस्तन एवं पकड़ना प्रारंभ कर देते हैं। सत्य/असत्य
   (घ) गतिक कुशलताएं निश्चित क्रम में आती हैं। सत्य/असत्य

(स) संज्ञानात्मक (मानसिक) विकास

संज्ञानात्मक विकास के अन्तर्गत मनुष्य के सोचने, तर्कक्षमता एवं संप्रत्यय निर्माण का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह मन के विकास से संबंधित होता है। एक प्रमुख मनोवैज्ञानिक ''पियाजे'' के मन मस्तिष्क की संरचना भी शरीर जैसी होती है। मन की मूल इकाई को 'स्किमा' कहा जाता है। एक स्किमा किसी वस्तु में मूल तत्व का अमूर्त प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरण के लिए शिशु का स्किमा एक अण्डाकार फ्रेम जैसा होता है जिसमें क्षेतिज वत्ताकार वस्तु (आंखें) होती हैं। ऐसा लगता है कि स्किमा किसी विशेष वस्तु अथवा घटना की वास्तविक प्रति नहीं होती है। इस जटिल अवधारणा में मानसिक संगठन (एक बच्चे के भीतर विशेष दशाओं की अवधारणा) तथा परीक्षणात्मक व्यवहार दोनों शामिल होते हैं। स्किमा को व्यवहार द्वारा जाना जा सकता है अर्थात् चूसने की स्किमा में भूख का स्किमा समाविष्ट होता है इसलिए वह चूसता है। यहां पर भूख लगना स्किमा है तथा भोजन प्राप्त करने का प्रयास अथवा चूसने की प्रक्रिया व्यवहार है जो कि अवलोकनीय होता है।

स्किमेया (स्किमा का बहुवचन) एक बौद्धिक संरचना होती है जो घटनाओं को संगठित करती है क्योंकि ये सामान्य विशेषताओं के अनुरूप समूहों में प्राणियों द्वारा प्रत्यक्ष किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, चेहरे के स्किमा में बच्चा कुछ सामान्य विशेषता देखता है जो कि सभी मानव चेहरों में एक विशेष तरीके से व्यवस्थित होती हैं। ये बार–बार होने वाली मनोवैज्ञानिक घटनाएं हैं जिनको बच्चा स्थैर्य ढंग से उद्दीपक रूप में वर्गीकत करता है।

ज्ञानात्मक विकास दो सामान्य सिद्धान्तों द्वारा प्रभावित होता है: व्यवस्थापन तथा अनुकूलन

संगठन में सभी प्रक्रमों का एक प्रणाली में समेकन है। आरंभ में शिशु का स्किमा देखने तथा पकड़ने में बिल्कुल भिन्न होता है जिसके परिणामस्वरूप हाथ तथा आंख में दोषपूर्ण समन्वय हो जाता है। आखिरकार बच्चा इन स्किमेयों को एक ही समय पर वस्तु को पकड़ने और देखने के लिए व्यवस्थित करता है।

अनुकूलन एक दोहरी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बच्चे अपने आस–पास के वातावरण के साथ प्रभावशाली रूप से नई संरचना का सजन करते हैं। इसमें आत्मसातकरण तथा समंजन दोनों शामिल होते हैं, जो विवेकपूर्ण व्यवहार का निचोड़ होता है।

आत्मसात्करण नई वस्तु को ग्रहण करता है, अनुभव तथा अवधारणा स्किमेय के नए रूप हैं। जब बच्चे नए उद्दीपक की प्रतिक्रिया के लिए इसका प्रयोग करते हैं वे ही आत्मसात्करण कहलाते हैं। इसमें बच्चे एक वस्तु के अर्थ को मौजूदा स्किमेय से जोड़ते हैं। उदाहरण के लिए, 8-9 महीने का एक बच्चा जो कि एक गेंद देख रहा हो वह संभवतः अपने मुंह में उस गेंद को रखने की कोशिश करेगा। पियाजे के विचार में, बच्चा गेंद को अपने चूसने के स्किमा में आत्मसात करता है।

समायोजन की प्रक्रिया में, बच्चा अपने स्किमा को परिवर्तित करता है ताकि उसकी प्रतिक्रिया उस वस्तु को अच्छे तरीके से अनुकूल कर सके। नई वस्तु तथा परिस्थितियों के साथ ताल–मेल स्थापित करने के लिए जिस प्रक्रिया के माध्यम से बच्चे अपने कार्य को बदलते हैं उसे समायोजन कहा जाता है। समायोजन का उदाहरण दूसरों के अनुकूल करना है। अनुकूलन की प्रक्रिया में बच्चा अपने पास सुलभ स्किमा को छिपा लेता है तथा नए स्केमा को बनाने का प्रयत्न करता है।

आत्मसातकरण तथा समायोजन ज्ञानात्मक वद्धि तथा विकास के लिए आवश्यक होते हैं और विश्व में बच्चों की अवधारणाओं को परिवर्तित करने के लिए निरन्तर साथ–साथ कार्य करते हैं और प्रतिक्रिया करते हैं। आत्मसातकरण तथा समायोजन के बीच सन्तुलन बनाए रखने को ही समयावस्था कहते हैं।

पाठगत प्रश्न 12.4

उपयुक्त शब्दों के साथ रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

1. ..... दोहरी प्रक्रिया है जिससे बच्चे आस–पास के वातावरण से प्रभावशाली ढंग से तालमेल बनाए रखने के लिए नई संरचनाओं का सजन करते हैं।
2. ..... नई वस्तु अथवा अनुभव अथवा अवधारणा में मौजूदा स्किमेय परिवर्तित होता है।
3. वह प्रक्रिया जिसके द्वारा बच्चे नए विषयों के साथ तालमेल बनाए रखने के लिए अपनी कार्यों को बदलते हैं उसे ..... कहा जाता है।

टिप्पणी

4. आत्मसातकरण में ..... और ..... दोनों शामिल होते हैं।

5. मन के मूल यूनिट अथवा संरचना को ..... कहा जाता है।

6. ..... में एक संपूर्ण प्रणाली में सभी प्रक्रियाओं के समन्वय शामिल रहते हैं।

मानसिक विकास के चरण

पियाजे के अनुसार, चार प्रमुख चरणों के माध्यम से संज्ञानात्मक विकास में वद्धि होती है:

(i) संवेदी गति (जन्म से 2 वर्ष): शिशुओं की प्रतिवर्त क्रिया द्वारा इसके लक्षण प्रतिबिम्बित होते हैं।

(ii) संक्रिया पूर्व (2 से 7 वर्ष)

(अ) पूर्व सम्प्रत्यय (2-4)

(ब) अन्तर्ज्ञानी (4-7)

इस अवधि के दौरान बच्चे आत्मकेन्द्रित होते हैं और उनमें वस्तु स्थायित्व की अवधारणा नहीं होती।

(iii) मूर्त संक्रिया (7 से 12 वर्ष)

इस आयु वाले बच्चे अपने आपको वातावरण से अलग करने में सक्षम होते हैं। वस्तु की उपस्थिति का ज्ञान होता है और लक्ष्य निर्देशित व्यवहार करते हैं वे चीजों और वस्तुओं को क्रम में व्यवस्थित कर सकते हैं।

(iv) औपचारिक संक्रिया (12+ वर्ष)

इस अवधि के दौरान बच्चे तर्क दे सकते हैं प्रौढ़ व्यक्ति के समान सोच–विचार करने में सक्षम होते हैं।

(द) नैतिक विकास

नैतिक विकास का संबंध नीतिशास्त्र या नीतिपरक नियमों, मूल्यों, अन्तर्विवेक तथा नैतिक कार्यों को न्यायिक ढंग से देखने की योग्यता से है। बच्चे में जब तक निर्धारित स्तर तक संज्ञानात्मक परिपक्वता नहीं आ जाती तब तक वह नैतिक निर्णय नहीं ले सकता। पियाजे के अनुसार, बच्चे नैतिक विकास के दो चरणों से होकर गुजरते हैं जिनमें एक कठोर जबकि दूसरा चरण नैतिक लचीलेपन को दर्शाता है। बच्चों की नियमों की अवधारणा, मन्तव्य, दण्ड तथा न्याय कठोर से लचीली सोच की ओर होता है। यह परिवर्तन ज्ञानात्मक विकास का प्रतीक है।

प्रथम चरण में

बच्चा, पूर्णतः सही अथवा पूर्णतः गलत के रूप में विचार करता है और सोचता है कि प्रत्येक व्यक्ति उसी तरह देखता है। वह अपने आपको दूसरों के स्थान में नहीं रख सकता। बच्चा वास्तविक भौतिक परिणामों की शर्तों के तहत निर्णय करता है और इसके पीछे उसकी कोई मंशा नहीं होती।

बच्चा नियमों का पालन करता है क्योकि वे परम पावन होते हैं तथा वे परिवर्तनीय नहीं होते।

एकतरफा सम्मान देने से यह प्रौढ़ जगत की मान्यताओं या नियमों का पालन करने में स्वयं को उपकत महसूस करता है।

बच्चे कठोर दण्ड देने के पक्ष में रहते हैं। वे महसूस करते हैं कि दण्ड ही किए गए गलत कार्यों को पारिभाषित करता है। यदि कोई क्रिया दण्ड लाती है तो वह गलत होगी।

भौतिक कानून एवं नैतिक कानून में बच्चे उलझ जाते हैं और विश्वास करते हैं कि कोई भौतिक दुर्घटना अथवा दुर्भाग्य किसी बुरे काम को परिणामस्वरूप ईश्वर अथवा किसी अन्य परमसत्ता द्वारा दिया गया दण्ड होता है।

चरण 2 में

बच्चा स्वयं को दूसरों के स्थान पर रख कर देख सकता है और दूसरों का दष्टिकोण समझ सकता है।

बच्चा किसी कार्य का निर्णय उसके पीछे छुपी मंशा से करता है उसके परिणाम से नहीं।

बच्चा समझता है कि नियम लोगों द्वारा बनाए जाते हैं और उसमें परिवर्तन किए जा सकते हैं। उनमें अधिकारी तथा समकक्ष के प्रति पारस्परिक सम्मान होता है। बच्चा कठोर दण्ड का पक्ष लेता है जो कि पीड़ित को सुधारने के लिए मार्गदर्शक होता है।

बच्चा प्राकतिक दुर्भाग्य को दण्ड नहीं मानता।

किशोर जब प्याजे की अमूर्त संक्रिया तक नहीं पहुँचते वे नैतिक विकास के उच्चतम शिखर पर नहीं पहुँच सकते। लोगों को सार्वभौम नैतिक सिद्धान्तों को समझने के लिए अमूर्त तर्क की क्षमता प्राप्त करनी होगी।

पाठगत प्रश्न 12.5

बताएं कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्य

1. बच्चे नैतिक निर्णय तब तक नहीं कर सकते जब तक कि वे संज्ञानात्मक परिपक्वता के निश्चित स्तर को प्राप्त नहीं कर लेते। सत्य/असत्य

टिप्पणी

2. पहले चरण में एक बच्चा कठोरता से नैतिक अवधारणा को लेता है जबकि दूसरे चरण में नैतिक लचीलेपन द्वारा। सत्य/असत्य
3. प्रथम चरण में, बच्चा संपूर्ण सत्य और संपूर्ण असत्य के रूप में विचार करता है और सभी उसी प्रकार देखते हैं सत्य/असत्य
4. दूसरे चरण में, बच्चा अपने आपको दूसरों के स्थान पर रख सकता है और दूसरों के दष्टिकोण को देखता है। सत्य/असत्य

(ध) भाषा विकास

बच्चे बोलने से पहले भाषा को समझना सीखते हैं। जन्म के केवल कुछ मिनट पश्चात, शिशु यह निश्चय कर सकता है कि आवाजें कहां से आ रही हैं। नवजात शिशु आवाजों में बारम्बारिता, गहनता, अवधि तथा गति के आधार पर अन्तर बता सकता है।

पहले वर्ष की समाप्ति पर, शिशु आवाजों को उनकी भाषा में स्पष्ट रूप से पहचान सकता है। वे शब्दों के जोड़े के बीच अन्तर को बता सकते हैं जो कि केवल प्रारंभिक आवाज (जैसे कैट एवं बैट) में भिन्न होते हैं।

बच्चे प्रथम वास्तविक शब्द बोलने से पहले पूर्व–भाषायी चरण का अनुसरण करते हैं जिसमें क्रमिक रूप से अभेदित रुदन, विभेदित रुदन, कूकना, बलबलाना या अपूर्ण नकल या दूसरों की ध्वनि की नकल करना, भाषा जाल की अभिव्यक्ति आते हैं।

हालांकि, वास्तविक संप्रेषण में, बोलने के गुण तथा दूसरे लोग क्या बोलते हैं को समझने की योग्यता शामिल होती है। इस प्रकार विकास कार्य के चार प्रमुख अनुक्रम हैं– बोधगम्यता, स्पष्ट उच्चारण, सुस्पष्ट शब्दावली और सार्थक वाक्य। जब शिशु पूर्ण रूप से सार्थक शब्द बोलता है तो वे पुनः उत्कष्ट चरणों से होकर जाते हैं जो कि इस प्रकार है:

1. एक शब्दीय वाक्य : एक वर्ष की आयु में बच्चा ''बाहर'' कहने लगता है। परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि वह क्या अर्थ लगाए ''मैं बाहर जाना चाहता हूँ'' अथवा ''मम्मी बाहर गई है''।
2. बहुशब्दीय वाक्य : लगभग दो वर्ष की आयु में वह दो अथवा उससे अधिक शब्दों के वाक्य बनाने का प्रयास करता है अर्थात् ''मैं जाऊँ''। इनमें शब्द केवल संज्ञा और क्रिया होते हैं। इस टेलीग्राफिक बोल में केवल वही शब्द होते हैं जो कि अर्थपूर्ण हों।
3. व्याकरणीय रूप से सही क्रियामूलक बोलियाँ : तीन वर्ष की आयु वाले बच्चे स्पष्ट रूप से भाषा की अभिव्यक्ति करते हैं। वे लगभग 900 शब्दों को याद रख सकते हैं, वे बड़े वाक्यों को बोल सकते हैं जिसमें वाक्य के सभी अवयव शामिल रहते हैं और उन्हें व्याकरणीय सिद्धान्तों के बारे में अच्छी जानकारी होती है। सिद्धान्तों के अपवादस्वरूप वे छोटी–छोटी घोषणाएं कर सकते हैं अर्थात हम स्टोर जा रहे हैं।

3 से 4. वर्ष की आयु के बीच वाले बच्चे 3-4 ''टेलीग्राफिक'' वाक्यों का प्रयोग कर सकते हैं जिसमें केवल अति आवश्यक शब्द शामिल रहते हैं। वे अनेक प्रश्नों को पूछ सकते हैं तथा साधारण आदेश दे सकते हैं और उसका अनुसरण भी कर सकते हैं। उन्हें लगभग 900-1200 शब्द याद रहते हैं। 4 तथा 5 वर्ष की आयु के बीच वाले बच्चे चार से पांच शब्दों के वाक्य बोल सकते हैं वे प्रीपोजीशन जैसे ओवर, अन्डर, इन, ऑन, तथा बिहाइन्ड का प्रयोग कर सकते हैं। वे संज्ञा की तुलना में क्रियाओं का प्रयोग अधिक करते हैं तथा उन्हें 1500 से 2000 शब्दों की शब्दावली स्मरण रह सकती है।

5 तथा 6 वर्ष की आयु के बीच वाले बच्चे छः से आठ शब्दों के वाक्यों को पारिभाषित करना शुरू कर देते हैं। और उन्हें कुछ विलोम शब्दों का भी ज्ञान होता है। वे प्रत्येक दिन अपनी अभिव्यक्तियों में अधिक से अधिक संयुक्ताक्षर, प्रीपोजीशन तथा आर्टिकल का प्रयोग करते हैं। व्याकरणीय दष्टि से बोली सुस्पष्ट होती है हालांकि उनमें नियमों का उतनी अच्छी तरह से ध्यान नहीं रखते। भाषा आत्मकेन्द्रित न होकर ज्यादातर सामाजिक होती है और उन्हें लगभग 2000-2500 शब्दों की शब्दावली का स्मरण रहता है।

6 तथा 7 वर्ष की बीच की आयु वाले बच्चे की बोली थोड़ी परिष्कत हो जाती है। वे इस अवस्था में मिश्रित, जटिल तथा व्याकरणीय दष्टि से सही वाक्यों को बोलते हैं। वे वाक्य के सभी भागों का प्रयोग करते हैं और उन्हें 3000-4000 शब्दों की शब्दावली का ज्ञान होता है। पियाजे के अनुसार पूर्व–स्कूल के बच्चों की बोली या तो आत्मकेन्द्रित होती है अथवा समाजीकत होती है। आत्मकेन्द्रित बोली में शब्दों और पाठ्यक्रमों का दुहराव होता है जोकि मोनालॉग (एक व्यक्ति से बात करने) तथा कलेक्टिव मोनोलॉग (दो या दो से अधिक) व्यक्तियों के आपसी वार्ता के लिए होता है। समाजीकत बोली स्पीच में दो तरफ से संप्रेषण होते हैं।

छः वर्ष की आयु के बच्चे मिश्रित व्याकरण का प्रयोग करने लगते हैं तथा उन्हें 2500 शब्दों की शब्दावाली का ज्ञान हो जाता है परन्तु वे सूक्ष्म विश्लेषण करने में निपुण नहीं होते। 4 वर्ष की आयु से बच्चे लम्बे वाक्यों को बोलने लगते हैं और अधिक जटिल व्याकरण का प्रयोग करते हैं। स्कूल के प्रारंभिक वर्षों के दौरान, वे यदा–कदा पैसिव वाक्यों अथवा क्रियाओं का प्रयोग करते हैं जिनमें हैव अथवा कंडीशनल वाक्य (यदि आप ऐसा करते, तो मैं यह कार्य कर देता) शामिल होते हैं। उनकी सिनटैक्स को स्पष्ट रूप से समझने की शक्ति तेज गति से बढ़ती है और यह संभवतः 9 वर्ष की आयु के पश्चात होता है। इस स्तर पर आत्मकेन्द्रीकरण की प्रवत्ति कम हो जाती है।

पाठगत प्रश्न 12.6

बताएं कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्यः

1. जन्म के पश्चात् शिशु को यह पता नहीं चलता कि आवाज कहां से आ रही है। सत्य/असत्य

टिप्पणी

2. विशिष्ट चरण पर बच्चे सुस्पष्ट सार्थक बोली बोल सकते हैं। सत्य/असत्य
3. 3 वर्ष की आयु के बच्चे वाक्य बोल सकते हैं। सत्य/असत्य
4. तीन से चार वर्ष के बीच की आयु वाले बच्चे तीन से चार शब्द वाले ''टेलीग्राफिक'' वाक्यों का प्रयोग कर सकते हैं। सत्य/असत्य

(न) व्यक्तित्व विकास

व्यक्तित्व विकास का संबंध व्यक्ति के शारीरिक बनावट, स्वभाव, गुण, योग्यताओं, आकांक्षाओं, रुचि आदि से है, जोकि उसका प्रतिनिधित्व करते हैं तथा उसे एक स्पष्ट पहचान दिलाते हैं।

व्यक्तित्व के संबंध में सबसे पुराना तथा अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रॉयड द्वारा किया गया। उसके अनुसार, व्यक्तित्व की संरचना के तीन भाग अर्थात् इड, इगो तथा सुपरइगो होते हैं। इगो तभी पनपता है जब तुष्टिकरण में देरी होती है; यह वास्तविकता के सिद्धान्त पर चलता है और यह तुष्टिकरण प्राप्त करने का सही और स्वीकार्य माध्यम है। सुपरइगो अथवा विवेक समाज के नैतिक कार्यों में शामिल होता है।

जन्म के समय पर ही इड होता है। शिशु आत्मकेन्द्रित होते हैं। यह तभी होता है जब तुष्टिकरण में विलम्ब होता है और वे खाने के लिए प्रतीक्षा करते हैं जिससे उनके इगो का विकास होता है और वे अपने आपको आस–पास के वातावरण से अलग समझना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार इगो जन्म के तुरन्त पश्चात विकसित हो जाता है। सुपरइगो तब तक विकसित नहीं होता जब तक कि बच्चे की आयु 4 अथवा 5 वर्ष की न हो जाए। फ्रायड के विचार में व्यक्तित्व का विकास एक संगठन तथा मूल काम शक्ति की अभिव्यक्ति अथवा कामवासना के रूप में होता है। फ्रायड के विचार में, मानव जीव मनोकामिक विकास (ओरल, एनल, फालिक, लेटेंसी, जेनीटल) के विभिन्न चरणों से गुजरता है। फ्रायड की मान्यता थी कि शैशव तथा बाल्यकाल की घटनाएं प्रौढ़ व्यक्तित्व के निर्धारण में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। उन्होंने देखा कि पहले तीन चरण प्रौढ़ लोगों के व्यवहार के साथ तालमेल रखने के लिए विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन चरणों के दौरान हुए अनुभव प्रौढ़ लोगों के व्यक्तित्व के गुणों तथा समायोजन के तरीकों को निर्धारित करते हैं। यदि उसकी आवश्यकताएं पूरी नहीं होती अथवा उनमें केन्द्रिकता पैदा हो जाती हैं तो व्यक्ति का व्यक्तित्व एक विशेष स्तर पर स्थिर होकर रह जाता है। स्थिरता का अर्थ मनोरोग की तरह का अपरिपक्व लगाव होता है, जो सामान्य विकास में रुकावट डालता है।

मुखीय अवस्था (जन्म से 12-18 महीने) में बच्चे किसी भी चीज को मुह में डालकर चूसते हैं और उससे अपना तुष्टिकरण करते हैं। इस अवस्था के दौरान, शिशुओं का संबंध केवल अपना तुष्टिकरण करने से है। वे पूरा इड होते हैं क्योंकि वे सुख के सिद्धान्त पर

कार्य करते हैं। यदि एक बच्चा इस अवस्था पर सन्तुष्ट महसूस नहीं करता तो वह स्थिर हो जाता है। ऐसे मामले में प्रौढ़ व्यक्तित्व मुख–चुम्बन, धूम्रपान, नाखून काटने, अधिक भोजन अथवा अधिक मदिरापान अथवा प्रिय वस्तु की दबावपूर्ण मांग अथवा बच्चों जैसी अधिक निर्भरता से अमानुपातिक सन्तुष्टि पाते हैं।

गुद काल (एनल स्टेज) (12-18 महीने से 3 वर्ष): इस अवस्था पर बच्चे सर्वाधिक सुख अपनी उत्सर्जन प्रक्रिया से लेते हैं या जैसे उनकी उत्सर्जन प्रक्रिया का प्रशिक्षण किया जाए। यदि स्वच्छता पर अधिक ध्यान दिया जाए तो व्यक्ति नित्य कर्मों के लिए मनोग्रस्तिज रूप से स्वच्छ अथवा अवज्ञा करके गंन्दा, दंभी, मनोग्रस्तिज रूप से निश्चित तथा जड़तापूर्वक बंध हो सकता है। गुदकाल में होने वाली समस्यायें व्यक्ति को अपनी चीजों को समेटकर रखने वाला बना सकती हैं अथवा उसे वस्तुओं को दान करने में साथ प्यार की पहचान मिलती है।

लिंगीय अवस्था (फालिक स्टेज) (पूर्व जनांगीय अवस्था): फ्रायड के अनुसार, मनोकामिक सुख का प्राथमिक क्षेत्र जोर 3 से 4 वर्ष की आयु पर परिवर्तित होता है, जब सुख और रुचि जनांगीय क्षेत्र में केन्द्रित हो जाते हैं। प्रीस्कूल्स लड़कियों तथा लड़कों और प्रौढ़ तथा बच्चों के बीच शारीरिक भिन्नताओं द्वारा सम्मोहित हो जाते हैं। ओडीपस ग्रन्थि (कॉम्प्लेक्स) के सिद्धान्त के अनुसार, 3-6 वर्ष का लड़का अपनी मां को अधिक प्यार करता है और इस प्रकार मां के प्यार तथा स्नेह के लिए अपने पिता के साथ द्वन्दी बनता है। नासमझी में छोटा बच्चा अपने पिता की जगह लेना चाहता है लेकिन वह पिता की शक्ति को पहचानता है। बच्चा अपने पिता के प्रति निष्कपट प्रेम, विरोधी भावना तथा विद्वेष, प्रतिद्वन्दिता तथा डर के कारण द्वन्दात्मक भावना से ग्रसित हो जाता है। यह ध्यान देते हुए कि छोटी लड़कियां भिन्न होती हैं, उनहें क्या हुआ वह आश्चर्य चकित होता है। तथा अपनी माता के प्रति भावनाओं पर अपराधबोध उसे चिन्तित करता है कि उसका पिता उसे भी लड़की बना देगा। डरते हुए वह अपनी मां के प्रति अपनी लैंगिक इच्छाओं को दबाता है, पिता के प्रति प्रतिद्वन्दिता को रोकने की कोशिश करता है तथा उनके साथ ही अपनी पहचान खोजता है।

फ्रायड के मनोलैंगिक विकास के सिद्धान्त से सहमत होते हुए भी कारेन होर्ने (1924) इस विचार को खारिज करती हैं कि किशोर युवतियां, लैंगिक अवस्था के दौरान शिशन ईर्ष्या का अनुभव करती हैं। इसके विपरीत वह गर्भस्थ ईर्ष्या की संकल्पना का आभास प्रकट करती हैं कि लड़के नारी की शारीरिक संरचना के उन भागों से घणा कर सकते हैं जो कि उसके पास नहीं हैं। वह विचार देती हैं कि किशोरियां संरचनात्मक शिशन की इच्छा नहीं करती बल्कि सामाजिक शिशन एक शक्ति तथा पहचान जो लैंगिक प्रतीति उसके नरप्रतिरूप को सुनिश्चित करती है।

इलैक्ट्रा मनोग्रन्थि इडिपस मनोग्रन्थि के समान है। एक छोटी बच्ची अपने पिता को चाहती है लेकिन अपनी माता से डरती है। इन भावनाओं को दमित करती है और अन्ततः स्वलिंगी माता–पिता के साथ पहचान बनाती है।

टिप्पणी

परम अहं (सुपर इगो) का विकास

स्वलिंगी माता–पिता के साथ पहचान बनाते हुए बच्चे वस्तुतः माता–पिता के व्यक्तित्व को अपने में अन्तःक्षेपित करते हैं। मनोविश्लेषक के विचार में यह अन्तःक्षेपण कहलाता है। वे अपनी इच्छाओं, महत्व तथा मानदण्डों का अन्तःक्षेपित करते हैं। यह परम अहं अन्तर्विवेक के समान होता है। इस अवस्था में एक बच्चे का अन्तर्विवेक अडिग होता है।

मध्य बाल्यावस्था तक, नवयुवक अपने ओडिपल द्वन्दों का समाधान करके, अपनी सैक्स भूमिका को स्वीकार करते हैं और अपनी ऊर्जा को तथ्य, कौशल तथा सांस्कतिक अभिवत्तियों को अर्जित करने में लगाते हैं।

स्कूल जाने वाले बच्चे में अहं अथवा आत्म–संप्रत्यय का विकास सभी क्षेत्रों से धमकी प्राप्त करता है। सुदढ़ता को बनाए रखने के लिए बच्चे प्रतिरक्षात्मक युक्तियों का विकास कर सकते हैं जिनमें से अनेक पूरे जीवन में बनी रहती हैं। आप इनमें से कुछ के बारे में पाठ 17 में पढ़ सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 12.7

रिक्त स्थानों की पूर्ति करोः

1. ..... वास्तविकता के सिद्धान्त पर कार्य करता है तथा तुष्टिकरण प्राप्त करने के लिए स्वीकार्य तरीके का प्रयोग करता है।
2. ..... अथवा अन्तर्विवेक समाज की नैतिकता को शामिल करता है, विशेषकर समान लिंगी के माता–पिता के साथ पहचान द्वारा।
3. ..... अवस्था में उनका तुष्टिकरण ..... मुंह में जा सकने वाली किसी भी चीज को चूसने से होता है।
4. ..... अवस्था में उनके उत्सर्जन क्रिया से अत्याधिक सुखद अनुभव होता है।
5. आडीपस ग्रन्थि में बच्चे ..... लिंग के प्रति प्यार दर्शाते हैं।

बताएं कि नीचे दिये गये कथन सत्य हैं अथवा असत्यः

1. इद (इड) जन्म के समय पर होता है। सत्य/असत्य
2. जन्म के तुरन्त बाद अहं (इगो) विकसित होता है। सत्य/असत्य
3. 14 अथवा 15 वर्ष की आयु से पहले अहं (इगो) विकसित नहीं होता। सत्य/असत्य
4. व्यक्तित्व विकास प्राथमिक काम ऊर्जा अथवा कामवासना का संघटक तथा अभिव्यक्ति होता है। सत्य/असत्य

टिप्पणी

5. फ्रायड के अनुसार, शिशु तथा पूर्वबाल्यावस्था की घटनाएं प्रौढ़ व्यक्तित्व को प्रभावित नहीं करती हैं। सत्य/असत्य

प) मनोसामाजिक विकास

मनोसामाजिक विकास सामाजिक संसार के लिए बच्चों की अनुक्रिया को प्रतिबिम्बित करता है। इसमें स्वबोध, दूसरों तथा अन्यों के साथ संबन्ध शामिल होता है। 2-6 वर्ष की आयु से बच्चा यह सीखता है कि कैसे सामाजिक संपर्क स्थापित किया जाए तथा वह लोगों के साथ घर से बाहर जाने लगता है। वह स्वयं को दूसरों के अनुकूल करना सीखता है तथा सामूहिक खेल में सहयोग करता है।

भ) संवेगात्मक विकास

जीवन में व्यक्तिगत समायोजन करने में सभी संवेग महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। नवजात शिशु में संवेगात्मक प्रतिक्रिया की योग्यता मौजूद होती है। अत्यधिक उत्तेजना के कारण संवेगात्मक व्यवहार का पहला चिन्ह सामान्य उत्तेजना होता है। वर्ष 1919 में मनोवैज्ञानिक ने दावा किया कि शिशुओं में जन्म के समय प्रमुख रूप से तीन संवेग निहित होते हैं– प्यार, क्रोध और भय जो कि उद्दीपकों के प्रति स्वाभाविक अनुक्रियाएं हैं। एक दशक के पश्चात यह सुझाव दिया गया कि शिशुओं में संवेगात्मक प्रवत्ति सामान्य होती है और न कि विशेष प्रकार की जैसा कि मनोवैज्ञानिकों का विश्वास था। अब इस पर विश्वास किया जाता है कि नवजात शिशु में केवल एक संवेग दिखाई देता है जो कि अस्पष्ट उत्तेजना है। नवजात शिशु की सामान्य उत्तेजना में विभेद साधारण प्रतिक्रिया में हो जाता है जो कि सुख और दुःख है। यहां तक कि एक वर्ष की आयु में, संवेगों की संख्या बढ़ जाती है और बच्चों मे आनन्द, क्रोध, डर, ईर्ष्या, प्रसन्नता, चिन्ता, उत्सुकता तथा जलन आदि भावनाएं प्रतिबिम्बित होती हैं। जन्म के समय संवेग रहते हैं और इनका विकास बच्चे की परिपक्वता तथा सीखने के कारण होता है।

बच्चों के संवेग वयस्कता के साथ सामान्य से विशिष्ट की ओर विकसित होते हैं। जीवन के प्रथम सप्ताह से वे, भूख, सर्दी, दर्द, कपड़े न पहने होने तथा सोने में व्यवधान होने, उनको भोजन मिलने में व्यवधान होने तथा अकेले पड़े रहने के कारण रोते हैं। बच्चे की मुस्कान का अर्थ प्राथमिक सम्प्रेषण है जो संवेग का एक सुन्दर चक्र बना देता है। लगभग चार महीने का बच्चा जोर–जोर से हंसना शुरू कर देता है। वे सभी प्रकार की चीजों पर उत्तेजित तरीके से जोर से हंसते हैं। संवेगात्मक क्षेत्र में, किशोर अपने संवेगों को अमूर्त विचारों की ओर निर्देशित करने में सक्षम होते न केवल लोगों की ओर। बहुत से किशोर प्रत्येक व्यक्ति की निरन्तर संवीक्षा से अनुभव करते हैं और सोचते हैं कि दूसरे लोग उनके वैसे ही प्रशंसक या आलोचक हैं जैसे अपने प्रति वे स्वयं। वे निरन्तर काल्पनिक श्रोताओं के प्रति रचना या प्रतिक्रिया करते रहते हैं। वे घंटों शीशे के सामने खड़े होकर कल्पना करते रहते हैं कि वे दूसरों की आंखों में कैसे लग रहे होंगे।

पाठगत प्रश्न 12.8

बताएं कि क्या निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्यः

1. नवजात शिशु में केवल एक संवेग दिखाई देता है – सामान्य उत्तेजना। सत्य/असत्य
2. बच्चों के संवेग अलग होते हैं क्योंकि वे प्रौढ़ता की ओर सामान्य से विशिष्ट की ओर बढ़ते हैं। सत्य/असत्य
3. संवेगात्मक क्षेत्र में, किशोरावस्था के बच्चे अपने संवेगों को अमूर्त विचारों पर प्रतिबिम्बित करने में सक्षम होते हैं और न कि केवल लोगों के प्रति। सत्य/असत्य
4. जन्म के समय ही संवेग विद्यमान रहते हैं और इनका विकास परिपक्वता तथा सीखने के कारण होता है। सत्य/असत्य

आपने क्या सीखा

- जीवन के विभिन्न चरणों में विकास होता हैः

(i) गर्भस्थ (प्री नैटल) –	जन्म से पहले	
(ii) शैशव (इनफैन्सी) –	0-3 वर्ष	
(iii) प्री–स्कूल –	3-6 वर्ष	
(iv) स्कूली बच्चे –	6-12 वर्ष	
(v) किशोर अवस्था –	12-20 वर्ष	
(vi) प्रौढ़ता –	युवा	20-50 वर्ष
	प्रौढ़	50-65 वर्ष
	आयुगत प्रौढ़	65+ वर्ष

- एक विशेष उम्र की सामाजिक जरूरतों को विकास कार्य के रूप में जाना जाता है।
- मील का पत्थर (माइल्सटोन) वह उम्र है जिसमें विशेष कुशलताओं की आवश्यकता होती है।
- विभिन्न क्षेत्रों में विकास होता है प्रत्येक के लक्षण पेज 45-46 पर दिए गए हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. विकास के विभिन्न स्तरों तथा इनसे संबंधित आयु समूहों की चर्चा करें।
2. विकासात्मक कार्य क्या हैं?
3. विकास के मुख्य क्षेत्र कौन से हैं?
4. शिशुओं तथा प्री स्कूल बच्चों के दष्टिकोण में अन्तर का वर्णन कीजिए।
5. निम्नलिखित शॉर्ट नोट बनाइए:

   (क) संज्ञानात्मक विकास

   (ख) नैतिक विकास

   (ग) व्यक्तित्व विकास

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

12.1

1. चरण 2. विकासात्मक कार्य 3. चरण 4. प्रथम तीन वर्ष 5. 50

12.2

1. क) दो बार ख) तीन; एक–चौथई ग) चर्बी उत्तक

   घ) शारीरिक, गतिक, मानसिक, भाषा, व्यक्तित्व, मनोसामाजिक, संवेगात्मक नैतिक, व्यावसायिक

2. क) गलत ख) गलत ग) सही घ) सही
3. क) सही ख) सही ग) गलत घ) सही

12.3

1. मील के पत्थर आयु हैं जिस पर विशिष्ट कौशलों को विकसित किया जाता है।
2. क) सही ख) गलत ग) गलत घ) गलत ङ) सही

12.4

1. क) अनुकूलन ख) समंजन ग) समानुकूलन

   घ) समंजन; समानुकूलन ङ) स्किमा च) स्किमेय

टिप्पणी

12.5

1) सही 2) सही 3) सही 4) सही

12.6

1) गलत 2) सही 3) सही 4) गलत

12.7

1. क) अहं ख) परम अहं ग) मुखीय घ) पार्यवाय

2. क) सही ख) सही ग) सही घ) सही ङ) गलत

12.8

1. सही 2. सही 3. सही 4. सही

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. खण्ड 12.2 का संदर्भ ले
2. खण्ड 12.1 का संदर्भ ले
3. खण्ड 12.3 का संदर्भ ले
4. खण्ड 12.3 (क) का संदर्भ ले
5. क) खण्ड 12.3 (ग) का संदर्भ ले
6. ख) खण्ड 12.3 (घ) का संदर्भ लें

6. ग) खण्ड 12.3 (च) का संदर्भ ले

13

किशोरावस्था

हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में एक ऐसे विशेष स्तर से गुजरता है जहां हम स्वयं को अपने शरीर में होने वाले अचानक परिवर्तनों से अनभिज्ञ होते हैं या जब हमारे बुजुर्ग यह कहने का कोई मौका नहीं छोड़ते हैं कि अब तुम बड़े हो गए हो किन्तु इतने बड़े नहीं कि अपने निर्णय स्वयं ले सको। इस प्रकार की टिप्पणियों से अब हम भली प्रकार से परिचित हो गए हैं। बचपन से वयस्क तक बढ़ने की अवधि को किशोरावस्था कहते हैं।

एक मनुष्य के जीवन चक्र में किशोरावस्था महत्वपूर्ण स्तरों में से एक है। इस स्तर में व्यक्ति में शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक दष्टि से अति तीव्र परिवर्तन होते हैं। किशोरावस्था का सामान्य अर्थ 'बड़ा होना' है। इसका अर्थ अनेक विकासात्मक कार्यों को पूरा करना है। किशोर को अपने शरीर तथा व्यवहार में आए परिवर्तनों के साथ समन्वय बिठाना होता है। उसे अनुभव होने लगता है कि वह अब बच्चा/बच्ची नहीं रहा/रही किन्तु अभी वयस्क भी नहीं हुआ/हुई है। बढ़ते हुए किशोर क्या अनुभव एवं महसूस करते हैं? वे अपने शारीरिक परिवर्तनों से कैसे निपटते हैं? वे ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं जैसा वे कर रहे होते हैं? किशोरों की कुछ मनोवैज्ञानिक विशेषताएं क्या हैं? यह कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें समझने में आपको इस पाठ से मदद मिलेगी।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आपके लिए सम्भव होगा:

- किशोरावस्था के महत्व का उल्लेख करना;
- किशोरों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का वर्णन करना;

- किशोरावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक व मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को समझना;
- लड़कों व लड़कियों की गौण यौन विशेषताओं को सूचीबद्ध करना;
- किशोरों द्वारा किए जाने वाले विकासात्मक कार्यों की सूची तैयार करना;
- किशोरों के समक्ष आने वाली शारीरिक तथा आत्म संबंधी समस्याओं को सूचीबद्ध करना; तथा
- किशोरों की जोखिम उठाने वाली विशेषताओं तथा नशीली दवाइयों का सेवन, एस टी डी, एच आई वी/एड्स तथा विवाहपूर्व गर्भधारण के मध्य संबंधों को इंगित करना।

13.1 किशोरावस्था क्या है?

किशोरावस्था का स्तर मनुष्य के विकास के महत्वपूर्ण स्तरों में से एक है जो बचपन के स्तर से वयस्कावस्था तक होने वाले परिवर्तनों में सहायक होता है। यह अवस्था 12 वर्ष की आयु से आरम्भ होती है तथा 18 वर्ष की आयु तक निरन्तर रहती है। इस अवधि में बच्चे में तीव्र तथा महत्वपूर्ण शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक रूपांतरण उत्पन्न होते हैं जैसे यौन अंगों का परिपक्व होना तथा लम्बाई व भार का बढ़ना। अब हम इनके संबंध में अध्ययन करेंगे।

किशोरावस्था के दौरान शारीरिक परिवर्तनः यौवनारम्भ तथा अवस्थान्तर

किशोरावस्था के दौरान शारीरिक विकास के निम्नलिखित पांच क्षेत्रों में महत्वपूर्ण वद्धि देखी जाती हैः

1. लम्बाई
2. भार
3. कंधों की चौड़ाई
4. नितम्ब की चौड़ाई
5. मांसपेशी में सुदढ़ता

यौनारम्भ के दौरान परिवर्तन विलक्षण होते हैं। एक स्कूल जाने वाला बच्चा कुछ ही वर्षों में पूर्णतः विकसित वयस्क बन जाता है। इन परिवर्तनों का निम्नानुसार वर्गीकरण किया जा सकता है।

1. हार्मोन का परिवर्तन
2. शरीर के आकार तथा समानुपात में परिवर्तन

3. मासपेशियों का बढ़ना व अन्य आन्तरिक परिवर्तन
4. यौन परिपक्वता

लम्बाई व भार में वद्धि शरीर में चर्बी के पुनर्व्यवस्थन तथा हड्डियों तथा मासपेशियों के अनुपात में वद्धि से संबंधित है। लड़कों में सामान्यतः यह विकास लड़कियों की तुलना में दो वर्ष पहले आरम्भ हो जाता है किन्तु यह लम्बी अवधि के लिए रहता है। शारीरिक समानुपात में भी परिवर्तन होते हैं। लड़कियों में सामान्यतः नितम्बों में वद्धि होती है तथा लड़कों के कंधे चौड़े होते हैं। कमर रेखा में अनुपातिक रूप से कमी होती है।

शरीर में अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ द्वारा हार्मोन के स्राव में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। जनन ग्रन्थि या गोनाड्स क्रियात्मक हो जाते हैं जो यौन संबंध विकास उत्पन्न करते हैं। लड़कों व लड़कियों में यौन विशेषताएं उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें व्यापक रूप से निम्नानुसार वर्गीकत किया जा सकता है।

1. प्राथमिक तथा
2. गौण

लड़कों में यौन विशेषताओं से संबंध पुरुष यौन अंगों यथा लिंग, वषण, मुष्क में विकास होता है। लड़कियों में प्राथमिक यौन विशेषताओं में यौन अंग यथा यूटरस, फलोपियन ट्यूब तथा वक्ष स्थल के विकास शामिल हैं। लड़कियों में अण्डमोधन तथा रजोधर्म तथा लड़कों में वीर्य की उत्पत्ति प्राथमिक यौन विकास हैं जो पुनरुत्पादन क्षमता से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है।

13.2 किशोरावस्था के दौरान विकासात्मक कार्य

एक किशोर को वयस्क के रूप में प्रभावशाली रूप से कार्य करने के लिए विशिष्ट अभिवत्तियाँ, आदतें तथा कौशल प्राप्त करने होते हैं। इन्हें किशोरावस्था के विकासात्मक कार्य कहते हैं।

शिशु अवस्था व बचपन के दौरान, उदाहरण के लिए, विकासात्मक कार्यों में ठोस आहार को लेने का अभ्यास, मनोवैज्ञानिक स्थिरता प्राप्त करना तथा सामाजिक व शारीरिक वास्तविकताओं की सामान्य अवधारणाओं का सजन करना शामिल होता है। बचपन की मध्यवर्ती स्थिति के दौरान विकासात्मक कार्योंमें शामिल हैं खेलों के लिए आवश्यक शारीरिक कौशलों का सीखना तथा उपयुक्त यौन भूमिका को सीखना। आपने पहले ही पिछले पाठों में इन विकासात्मक मांगों के बारे में पढ़ा है।

विकासात्मक कार्य वे कार्य हैं जो कि व्यक्ति के जीवन में एक निश्चित अवधि से संबंधित होते हैं। विकासात्मक कार्यों के सफलतापूर्वक निष्पादन के परिणामस्वरूप खुशी

टिप्पणी

की प्राप्ति होती है तथा बाद के कार्यों में सफलता प्राप्त होती है, जबकि इनमें विफलता के कारण व्यक्ति में दुख की उत्पत्ति, समाज द्वारा अस्वीकति तथा बाद में कार्यों को करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

किशोरावस्था के मुख्य विकासात्मक कार्यों को निम्नानुसार सूचीबद्ध किया गया है।

- अपनी शारीरिक बनावट को वैसे ही स्वीकार करना जैसे वह है तथा अपने शरीर का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग करना।
- दोनों लिंगों के सहपाठियों के साथ नए व अधिक परिपक्व संबंधों को स्थापित करना।
- पौरुषी या स्त्रीवाधी सामाजिक भूमिका को प्राप्त करना
- मातापिता तथा अन्य वयस्कों से भावात्मक स्वतंत्रता प्राप्त करना।
- आनन्दमयी तथा उत्पादक कैरियर के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता के लिए स्वये को तैयार करना।
- विवाह तथा पारिवारिक जीवन के लिए तैयारी करना।
- मूल्यों के समुच्चय तथा नैतिक प्रणाली को प्राप्त करना तथा व्यवहार के मार्गदर्शक के रूप में एक विचारधारा को विकसित करना।

इस प्रकार एक किशोर को कौशलों व क्षमताओं की व्यापक श्रंखला को विकसित व अधिग्रहित करना होता है। ये विकास के सभी पहलुओं से संबंधित होते हैंः शारीरिक, संवेगात्मक, नैतिक तथा संज्ञानात्मक।

13.3.1 संवेगात्मक विकास

किशोरावस्था के दौरान एक व्यक्ति को व्यापक श्रंखला तथा विविध संवेगों का सामना करना पड़ता है। इनमें नकारात्मक व सकारात्मक दोनों प्रकार के संवेग शामिल हैं। प्रसन्नता का अनुभव आनन्द, ओजस्विता, प्रफुल्लिता आदि के रूप में किया जाता है तथा उदासी का अनुभव अवसाद, दुख, दुश्चिंता, भय आदि के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त क्रोध, विद्रोह तथा आक्रोश की भावना भी उत्पन्न होती है। किशोरावस्था के दौरान देश के प्रति वफादारी, देशभक्ति तथा बलिदान की भावनाएं भी उत्पन्न होती हैं

उपर्युक्त प्रत्येक संवेग की अनुभूति अत्यंत तीव्र होती है। बहरहाल, किशोरावस्था के संवेगों की सुदढ़ता तथा तीव्रता उनकी एक प्रमुख विशेषता है। किशोर हर बात को बढ़ाचढ़ा कर व्यक्त करते हैं। यह एक सामान्य बात है जब आप किशोरों द्वारा अपनी रुचि के लिए 'प्यार' शब्द का प्रयोग करते हैं जैसे मुझे आइस्क्रीम बहुत प्यारी है, मुझे केक बहुत प्यारा है इसी प्रकार अपनी नापसंद के लिए 'नफरत' शब्द का प्रयोग करते हैं– ''मुझे उस आदमी से नफरत है''। या ''मुझे फलों से नफरत है''।

मनोदशा में भी बार–बार परिवर्तन घटित होते हैं। यह भी किशोरों में एक प्रमुख प्रवत्ति है। कभी वे खुश रहते हैं, कभी वे उदास रहते हैं। कभी–कभी उनमें देशभक्ति की अति तीव्र भावना जाग्रत होती है तो कुछ क्षणों बाद ही वे भ्रमित या क्रोधित हो उठते हैं। इससे उनका व्यवहार कुछ अप्रत्याशित हो जाता है। यौन सम्बन्धी सांवेगिक अनुभव यथा वशीभूत करना तथा मोह भी इस अवधि के दौरान उत्पन्न होना आरम्भ कर देते हैं।

13.3.2 सामाजिक विकास

सामाजिक क्षेत्र में, किशोर अपने अन्तःव्यैक्तिक संबंधों में भारी परिवर्तन से गुजरते हैं तथा वे समाज को व उसके विविध प्रभावों को समझना आरम्भ कर देते हैं। बाल अवस्था के दौरान अभिभावकों पर आश्रितता में परिवर्तन होने लगता है तथा ये अपने मित्रों व सहपाठियों पर आश्रित होना आरम्भ कर देते हैं। यद्यपि, किशोरों के लिए मित्रता अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा इनमें से अधिकांश अपना अधिक समय अपने परिवार की अपेक्षा अपने मित्रों के साथ बिताना चाहते हैं। समवयस्क समूह में एक लोकप्रिय सदस्य के रूप में पहचाना जाना किशोरों की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। किशोर कई बार अपने माता–पिता तथा बुजुर्गों से तकरार करने लगते हैं क्योंकि वे उनके नियंत्रण से बाहर जाना चाहते हैं।

विपरीत लिंग के सदस्यों के प्रति आकर्षण भी किशोरावस्था की एक प्रधान विशेषता है। यह एक प्राकतिक प्रक्रिया है तथा मुख्य रूप से किशोरों में यौन संबंधी परिपक्वता के कारण उत्पन्न होती है।

किशोर अपनी स्वयं की समझ के अनुसार अपने विश्वास, विचार, अभिरुचियों को ग्रहरण करना आरंभ कर देते हैं। इस स्तर पर मीडिया उन्हें प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण साधन बन जाता है, विशेष रूप से संगीत व टी.वी. ये किशोर के उनके आदर्श मॉडल जैसे फिल्मी हीरो, महान एथलीट आदि उपलब्ध कराते हैं जिनका वे अनुसरण करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार के मॉडल किशोरों के उनकी कल्पनाओं व सपनों से अवगत कराने में सहायक होते हैं।

किशारों में शारीरिक छवी की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। एक अच्छी फीगर (शारीरिक स्वरूप) प्राप्त करना हर किशोर का जुनून है। इसके अतिरिक्त, उनके कपड़ों, मेकअप आदि में फैशन तथा ग्लेमर प्रदर्शित होता है। एक सही हेयरस्टाइल प्राप्त करना उनके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये उन सामाजिक भूमिकाओं से संबंधित है जो किशोर स्वयं में विकसित तथा अनुभव करना चाहते हैं।

13.3.3 संज्ञानात्मक विकास

किशोरों के चिन्तन तथा तर्क कौशलों का व्यापक रूप से विस्तार होता है। वे अब विशेष रूप से अपनी पूरवर्ती बालावस्था की स्थिति की तुलना में अधिक सक्षम हो जाते हैं।

टिप्पणी

किशोर पिगेट के ''औपचारिक प्रचालनों'' के स्तर में प्रवेश करते हैं जिसका तात्पर्य है कि वे विखण्डित अवधारणाओं को समझने लगते हैं तथा सम्भावनाओं की दष्टि से विचार करना आरम्भ कर लेते हैं।

किशोर अनुमानात्मक तथा वियोजनात्मक दोनों प्रकार से विचार करने की क्षमता विकसित कर लेता है। ये विभिन्न दष्टिकोणों को प्रदर्शित, विश्लेषित, आकलित, अनुमानित तथा उनकी चर्चा करने में भी सक्षम हो जाते हैं। विभिन्न विषयों पर किशोरों के अपने स्वयं के विचार महत्वपूर्ण हो जाते हैं इसके कारण सामान्यतः किशोर अभिभावकों, अध्यापकों व मित्रों के साथ उग्र चर्चा में लिप्त हो जाते हैं।

किशोर एक प्रयोगवादी के समान हर तथ्य पर प्रश्न करना आरम्भ कर देता है। वे निष्कर्ष पर तभी पहुंचते हैं जब वे तथ्यों से संतुष्ट हो जाते हैं। वे अपने दष्टिकोण का बड़ी दढ़ता के साथ पक्ष लेते हैं। उनके शब्द भण्डार में अद्वितीय विकास होने लगता है। किशोर एक साथ अनेक बौद्धिक कार्यों को करने में सक्षम होने लगते हैं जो उनके इस स्तर को बौद्धिक विकास का एक महत्वपूर्ण स्तर बना देता है।

13.3.4 नैतिक विकास

नैतिकता के क्षेत्र में भी किशोर अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तनों से गुजरते हैं। अब वे नैतिकता के एहसास को विकसित कर लेते हैं तथा समझने लगते हैं कि क्या सही और क्या गलत है। उनके विचार केवल इस बात पर अधारित नहीं होते कि उनके माता–पिता तथा अध यापकों ने उन्हें क्या सिखाया बल्कि उनके स्वयं के अनुभवों पर भी आधारित होते हैं। वे समाज में विद्यमान सामाजिक तथा नैतिक आचरणों पर प्रश्न करने लगते हैं तथा केवल उन्हीं नैतिक आचारों को स्वीकार करते हैं जिनसे वे संतुष्ट होते हैं।

एक अच्छा बच्चा/अच्छी बच्ची बनने या सबको खुश रखने की उत्सुकता अब महत्वपूर्ण नहीं रहती है। इसके स्थान पर अब प्रश्न पूछने वाला मस्तिष्क तथा विषयों पर अपने विचारों को रखने वाला किशोर ले लेता है।

इस स्तर के दौरान किशोर समाज में व्यवस्था को बनाए रखने के लिए कानून के महत्व को समझने लगता है। इसके अतिरिक्त वे व्यक्तिगत मूल्यों के एक समूह का सजन करने लगते हैं जो उनके जीवन में मार्गदर्शी सिद्धान्त बन जाते हैं। गिलीगन (१९८२) के अनुसार कोहलबर्ग के नैतिकता का सजन न्याय पर बल देता है जबकि नैतिक निर्णय लेने में भावना तथा देखरेख की भूमिका की अवहेलना करता है या महत्व नहीं देता है। गिलिगन स्वयं तथा अन्य सिद्धान्तवादी तर्क देते हैं कि कोहलबर्ग के कार्य का अभिप्राय की तुलना में नैतिक विकल्प अधिक लचीले तथा जटिल प्रक्रिति के होते हैं और नैतिकता को विचारों के अनेक समुच्चयों द्वारा एक साथ निर्देशित हो सकती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि किशोरावस्था पहचान संकट की अवस्था है, जब एक व्यक्ति न तो बच्चा होता है और न ही वयस्क। शारीरिक परिवर्तन तथा साथ ही साथ

मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के कारण, व्यकित को मजबूरन यह प्रश्न उठाना पड़ता है, ''मैं कौन हूँ?'' इस प्रश्न का उत्तर ढूंढना आसान नहीं है। वह सम्पूर्ण किशोरावस्था में इस प्रश्न से जूझता रहता है, बहरहाल, किशोरावस्था के अन्त में व्यक्ति अपनी पहचान की भावना के साथ उभरता है।

पाठगत प्रश्न 13.1

क. उपयुक्त शब्दों की सहायता से रिक्त स्थान भरें:

1. किशोरावस्था में संवेग अत्यंत ..... से उत्पन्न होते हैं।
2. किशोरावस्था के दौरान व्यक्ति का रूझान अपने माता पिता से हटकर .... की ओर होने लगता है।
3. संज्ञात्मक रूप से किशोर प्याजे के ..... अवस्था पर हैं।
4. बारम्बार ..... के कारण किशोर के संवेगों का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है।
5. नैतिक विकास के क्षेत्र में किशोर ..... के एक समूह को विकसित करना प्रारंभ कर देते हैं।

ख. उस क्षेत्र का नाम बताइए जिसमें मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं?

13.4 किशोर समस्याओं से निपटना और समायोजन

किशोरों की शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रवतियां तथा विकासात्मक कार्यों की प्रकति, उन्हें लगता है कि इनका सामना उन्हें करना पड़ेगा, के कारण विकास में संकट उत्पन्न हो जाता है। मूल रूप से किशोर अपने घर, स्कूल तथा समाज से संबंधित समस्याओं का सामना करते हैं।

निम्न सूचीबद्ध समस्याएं केवल कुछ समान उदाहरणों को दर्शाते हैं। प्रत्येक किशोर की व्यक्तिगत रूप से समान प्रकार की समस्याओं का विशिष्ट संयोग या अन्य समस्याएं हो सकती हैं। इनमें अधिक गंभीर समस्याएं हैं– नशीली दवाओं का सेवन, शराब पीना, सिगरेट पीना, कर्तव्यत्याग, यौन आवेग आदि। ये समस्याएं व्यक्तिगत रूप से सभी किशोरों में नहीं पाई जाएंगी।

टिप्पणी

तालिका 13.1: *किशोरों की सामान्य समस्या*

शरीर व स्वयं से संबंधित समस्याएं	परिवार से संबंधित समस्याएं	स्कूल से संबंधित समस्याएं	समाज से संबंधित समस्याएं समस्याएं
शारीरिक छवी	माता–पिता का प्राधिकारत्व	कड़े अध्यापक	लिंग पक्षपात
मुंहासे	माता–पिता के साथ	पक्षपातपूर्ण व्यवहार	जाति संबंधी
रंग	खराब संपर्क	बंद स्कूल	समस्याएं
भोजन संबंधी बुरी आदतें	सम्प्रेषण की कमी	वातावरण	पीढ़ी अन्तर
शारीरिक परिवर्तन	निम्न सामाजिक आर्थिक	सहपाठियों द्वारा	रूढिवादी पद्धतियां
मूडी होना	पष्ठभूमि	स्वीकार न किया	दमनात्मक
भावुकता	गैर अनुकूल वातावरण	जाना	अधिक उम्मीदें
क्रोध	स्थान की तंगी	कोई सहगामी	मित्रें की कमी
अतिसंवेदनशीलता	अन्यों के साथ तुलना	भागीदारी नहीं	
विद्रोह की भावना		स्कूल के लंबे घंटे	
मोहकता			
आकर्षण			
दिन में सपने देखना			

13.5 किशोरों के समक्ष आने वाली कुछ समकालीन समस्याएं

अब तक हम जान चुके हैं कि किशोरों के अनुभव शारीरिक तथा सामाजिक कारकों का परिणाम हैं। शारीरिक परिवर्तन सार्विक हैं। व्यवहार के तरीकों, नए अन्तःव्यैक्तिक संबंधों को विकसित करने के संबंध में बच्चों से सामाजिक उम्मीदों के कारण अनिश्चितता की स्थिति तथा स्वयं–असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

अब तक आपने पढ़ा कि किशोरावस्था एक व्यक्ति के लिए एक महत्वपूर्ण समक्रमण अवधि है। किशोरावस्था वह चरण है जो व्यक्ति को वयस्क जीवन के लिए तैयार करता है। व्यस्कता की अवस्था की ओर बढ़ने पर व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों, यथा व्यक्तिगत, सामाजिक तथा शैक्षणिक, की समस्याओं का सामना करता है।

किशोरावस्था अवधि के संबंध में रूढ़िबद्ध अवधारणाओं तथा भ्रांतियों ने किशोरों में विभिन्न समस्याओं को जन्म दिया है। कुछ गम्भीर विषय हैं गलत चीजों का सेवन, किशोरावस्था में गर्भधारण तथा यौन संक्रामक बीमारियां तथा एड्स, अब हम इन विषयों को विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे।

क) गलत वस्तुओं का सेवनः किशोरावस्था में गलत वस्तुओं के सेवन के कारण जीवनपर्यन्त परिणाम भुगतने पड़ते हैं। रोजाना के तनावों से बचने के लिए शराब व नशीली दवाइयों पर आश्रित होने के कारण उनके उचित निर्णय लेने की क्षमता को हानि पहुंचती है। इससे अवसाद तथा असामाजिक व्यवहारों सहित गंभीर सामंजस्य संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन समस्याओं से बचने के लिए उचित मार्गदर्शन तथा किशोरों में ऊर्जा के सजन के लिए अनुकूल वातावरण का

निर्माण किए जाने की आवश्यकता होती है ताकि वे अपने तनावों से सफलतापूर्वक निपट सकें।

ख) यौन संक्रमित बीमारियांः हाल में विश्वभर में देखी गई एक अन्य व्यापक समस्या यौन संचारित बीमारियां हैं। किशोरों के ऐसी बीमारियों से प्रभावित होने की सर्वाधिक सम्भावना है। यह ऐसा वर्ग है जो गैर–जिम्मेदाराना यौन व्यवहार में लिप्त होता है। किशोरों मे व्याप्त यौन संबंधी गलत अवधारणाओं को समाप्त करने में सहायता की जानी चाहिए जोकि व उन्हें बड़े जोखिम में डाल देते हैं। किशोरों को प्रभावपूर्ण रूप से उचित यौन शिक्षा उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

ग) किशोरावस्था गर्भधारणः जिम्मेदार अभिभावक बनना एक चुनौतीपूर्ण तथा तनावपूर्ण अनुभव है। किशोरों के लिए यह विशेष रूप से कठिन है। बच्चे के पोषण में माता व बच्चे के लिए असीमित कठिनाइयों का सफर होता है। यह आर्थिक तनाव को भी उत्पन्न करता है।

किशोरों की अनेक समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात अब हम इन समस्याओं के कारणों को समझेंगे। ये कारण हैंः अध्यापकों तथा माता–पिता से उचित मार्गदर्शन की कमी, मीडिया का अनुचित प्रभाव, समआयु समूहों के साथ गलत संबंध तथा शारीरिक परिवर्तनों के प्रति आशंकाएं, यौन अवधारणाओं के प्रति त्रूटिपूर्ण धारणाएं तथा मूड में तीव्र परिवर्तन। समाज तथा परिवार इन नवयुवकों को शिक्षा, व्यवसायिक तथा रोजगार के अवसर प्रदान करके उनके प्रारम्भिक किशोरावस्था की समस्याओं से बचा सकते हैं। समाज तथा परिवार द्वारा किशोरावस्था गर्भधारण तथा उनकी समस्याओं के संबंध में किशोरों का उचित मार्गदर्शन उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

मार्गदर्शन तथा निर्देशन प्रक्रिया के माध्यम से इन समस्याओं के समाधान में किशोरों की सहायता की जा सकती है। विशेष रूप से कैरियर काऊंसलिंग तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन से विभिन्न कैरियर अवसरों तथा शैक्षिक विकल्पों से अवगत कराया जा सकता है। व्यक्तिगत तथा सामाजिक काऊसंलिग किशोरों को अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने में सहायक होंगे। इन समस्याओं के समाधान में परिवार भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अभिभावक, बुजुर्ग तथा समआयु विकासशील किशोरों के लिए उपयोगी साबित हो सकते हैं।

आपने क्या सीखा

- किशोरावस्था मानव विकास की एक महत्वपूर्ण अवस्था है। यह बालावस्था से वयस्कता में अन्तरण की अवधि है।
- इस अवधि के दौरान तीव्र शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं।
- शारीरिक क्रियाओं में मुख्य परिवर्तन हैं विभिन्न ग्लैंडों द्वारा हार्मोन्स का सीक्रीशन। इस चरण के दौरान पुनुरुत्पादक क्षमता तथा यौन विशेषताएं भी विकसित होती हैं।

टिप्पणी

- वह अवधि जिसके दौरान यौन परिपक्वता को बनाने के लिए शारीरिक परिवर्तन होते हैं, उसे तारुण्या कहते हैं। तारुण्य को तीन स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है– तारुण्यतापूर्व, तारुण्यता, तारुण्यता पश्चात।
- किशोरों के कुछ विकासात्मक कार्य हैं– सहपाठियों के साथ नए व परिपक्व संबंध प्राप्त करना, उपर्युक्त पौरूष, स्त्रित्व सामाजिक भूमिका प्राप्त करना तथा भावनात्मक स्वतंत्रता प्राप्त करना आदि।
- शारीरिक परिवर्तनों के अतिरिक्त कुछ मनोवैज्ञानिक परिवर्तन जैसे संवेगात्मक विकास, संज्ञानात्मक तथा नैतिक विकास भी प्रारंभ होते हैं।
- किशोरों में घर तथा परिवार, स्वयं, स्कूल व समाज के संबंध में सामंजस्य की कुछ सामान्य समस्याएं उत्पन्न होती हैं।
- विभिन्न जीवन कौशलों का विकास तथा मार्गदर्शन व काऊंसलिंग किशोरों को वयस्कावस्था तक सुगमता से ले जाने में सहायक हो सकते हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. किशोर अपनी भावनाओं को कैसे व्यक्त करते हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
2. किशोरों में कौनसी प्रमुख सामाजिक विशेषताएं नजर आती हैं?
3. किशोर बच्चों से बोध की दष्टि से कैसे अलग होते हैं।
4. किशोरों के कुछ विकासात्मक कार्यों की सूची तैयार कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

13.1

क. 1. तीव्रता 2. समआयु 3. औपचारिक प्रचालन 4. मूड परिवर्तन

5 व्यक्तिगत मूल्य

ख. मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के क्षेत्र हैं– संवेगात्मक, सामाजिक संज्ञानात्मक तथा नैतिक

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. खण्ड 13.3.1 का संदर्भ लें।
2. खण्ड 13.3.2 का संदर्भ लें।
3. खण्ड 13.3.3 का संदर्भ लें।
4. खण्ड 13.2 का संदर्भ लें।

14

प्रौढ़ावस्था एवं वद्धावस्था

'बड़े होने पर तुम क्या करोगे?'

'तुम जीवन में क्या प्राप्त करना चाहते हो?'

'तुमने अपनी वद्धावस्था के लिए क्या योजना बनाई है?'

ये और इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रश्न प्रतिदिन हमारे दिमाग में आते हैं। हमारा जीवन दिन प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है। हमारे पास बहुत से विकल्प उपलब्ध है। जीवन के हर पड़ाव पर, लोगों की जीवनशैली में बहुत से परिवर्तन आ रहे हैं। पूरे जीवन में प्रौढ़ावस्था ही सबसे स्थायी अवस्था होती है। प्रौढ़ व्यक्ति बाहरी दुनिया के साथ तो समायोजन बैठाता ही है साथ ही स्वयं अपने साथ भी समायोजन बनाना होता है जिसके कारण उसमें स्थायित्व आता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति जिसकी नौकरी चली जाती है, वह दूसरी नई नौकरी पाने के लिए जी–तोड़ मेहनत करता है और उसके साथ तालमेल बनाने का प्रयास करता है।

इस पाठ का प्रारंभ प्रौढ़ावस्था के कुछ महत्वपूर्ण लक्षणों की चर्चा से प्रारंभ होता है। उसके बाद, प्रौढ़ावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों की बात की गई है। पाठ के अंतिम भाग में इस अवस्था के दौरान स्थितियों का सामना करने और तालमेल बैठाने सम्बन्धी समस्याओं पर चर्चा की गई है। वद्ध व्यक्तियों से जुड़ी कुछ मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप सक्षम होंगे:

- प्रौढ़ावस्था के दौरान किए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्यों का विवरण देने में;

- प्रौढ़ावस्था के महत्वपूर्ण लक्षणों की व्याख्या करने में; और
- वद्धावस्था में तालमेल बैठाने संबंधी समस्याओं का विवरण करने में।

14.1 प्रौढ़ावस्था का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

ऐसा समझा जाता है कि किशोरावस्था पर विकास समाप्त हो जाता है। केवल बुद्धिमत्ता का विकास प्रौढ़ावस्था में होता है। फिर भी, प्रौढ़ावस्था एवं वद्धावस्था में कुछ विशिष्ट वैकासिक कार्य होते हैं जिनमें विशिष्ट विकास एवं जीवन में विशेष समायोजन के लिए वद्धजन लगे रहते हैं। इस दष्टि से हैवींघर्स्ट और लेविसन के द्वारा दिये गये परिप्रेक्ष्य अति उपयुक्त हैं।

बाक्स 14.1: हैविधर्स्ट के वैकासिक कार्य

प्रारंभिक प्रौढ़ावस्था:

जीवन साथी चुनना, विवाहित साथी के साथ रहना सीखना, एक परिवार प्रारंभ करना, बच्चे पैदा करना, एक घर की व्यवस्था करना, एक व्यवसाय में लगना, नागरिक दायित्व संभालना और एक मैत्रीपूर्ण सामाजिक समूह खोजना।

मध्य प्रौढ़ावस्था:

प्रौढ़ नागरिक एवं सामाजिक दायित्व संभालना, एक आर्थिक जीवन स्तर स्थापित करना और उसे बनाये रखना, किशोरों को एक उत्तरदायी और प्रसन्न प्रौढ़ कनने में सहायता करना, अवकाश के समय के लिये प्रोढ़ों के कार्यक्रम बनाना, अपने जीवन साथी के साथ एक व्यक्ति के नाते सम्बन्ध बनाना, मध्यावस्था के मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को स्वीकारना और समायोजन करना तथा वद्ध माता–पिता के साथ समायोजन करना।

वद्धावस्था:

गिरती शक्ति और गिरते स्वास्थ्य के साथ समायोजन करना, सेवानिवत्ति और घटी आय के साथ समायोजन करना, जीवन साथी की मत्यु पर समायोजन करना, अपने आयु समूह के सदस्यों के साथ स्पष्ट सम्बन्ध बनाना, नागरिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना, भौतिक रहन–सहन की सन्तोषजनक व्यवस्था करना।

हैविंघर्स्ट के वैकासिक कार्य जीवन की स्थितियों पर आधारित हैं। दूसरा मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य डैनियल लेविन्सन का है जिन्होंने केवल पुरुषों के नैदानिक अध्ययनों पर अपने आंकड़े निकाले। लेविन्सन द्वारा दी गई अवस्थाओं का वर्णन बाक्स 14.2 में दिया गया है।

टिप्पणी

बॉक्स 14-2: लेविन्सन की अवस्थायें

परिवार छोड़ना (20-24): किशोरावस्था से आरंभिक प्रौढ़ावस्था की ओर ले जाने वाला यह एक संक्रमण काल है जिसमें घर से बाहर निकलना और परिवार के साथ एक मनोवैज्ञानिक दूरी स्थापित करना शामिल है। यह स्थिति एटिकसन के पहचान बनाम भूमिका की विस्तार अवस्था के समान है।

प्रौढ़ों की दुनिया में प्रवेश (आरंभिक 20 से 27-29 तक): नई खोजों का समय, और व्यावसायिक तथा अन्तरवैयक्तिक क्षेत्रों में प्रौढ़ भूमिकाओं के प्रति अस्थायी संकल्पों व प्रारम्भिक ''जीवन ढांचे'' के निर्माण का समय।

स्थापित होना (आरंभिक 30 से आरंभिक 40 तक): अधिक दढ़ संकल्पों का समय, कभी–कभी इसमें युंग और क्यूलेन का विस्तार संबंधी मूलभाव भी शामिल हो जाता है।

स्वयं अपना सहायक बनना (35-39): यह प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था का उच्चतम स्तर है।

प्रौढ़ावस्था संबंधी परिवर्तन (आरंभिक 40): यह एक विकासात्मक संक्रमण/परिवर्तन काल है जिसमें व्यक्ति को अपनी घटती हुई शारीरिक क्षमता और अपनी मत्यु संबंधी सत्य का तीव्र आभास होने लगता है। साथ ही जैसा कि युग का स्वयंसिद्ध विचार है कि व्यक्ति के नारीत्व संबंधी आयाम भी एकीकत होने लगते हैं।

पुनर्स्थापन और मध्यवर्ती प्रौढ़ावस्था का आरम्भ (मध्यवर्ती 40): यह वह काल है जिसमें कुछ पुरुष तो नए रचनात्मक स्तर कायम करते हैं किन्तु अन्य अपनी जीवनी शक्ति खो देते हैं।

यदि आप विकास सम्बन्धी कार्यों और प्रौढ़ावस्था के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के लेविनसन के विश्लेषण को देखें तो आप पाएंगे कि विशिष्ट विकासात्मक कार्यों का सम्बन्ध व्यक्ति के विभिन्न जीवन स्तरों पर उसके सामने आने वाली सामाजिक मांगों से जुड़ा होता है। उदाहरण के तौर पर, आरम्भिक प्रौढ़ावस्था के दौरान किसी व्यवसाय को अपनाने अथवा वैवाहिक रिश्ते में प्रवेश करने की आवश्यकता को व्यवसायिक भूमिका अथवा विवाह के लिए उपयुक्त जीवन साथी के चुनाव के दौरान सामने आने वाले विकासात्मक कार्यों और चुनौतियों का सामना करने तथा उन पर विजय प्राप्त करने में, जोड़ा जा सकता है। जीवन के विभिन्न स्तरों पर सामाजिक मांगों और उनसे उत्पन्न विकासात्मक कार्य, समाज की प्रकति और सांस्कतिक बंधनों पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय संयुक्त परिवार प्रणाली में विवाह और जीवन साथी के चुनाव की प्रकति मिली है और इसी कारण इनसे जुड़े विकासात्मक कार्य भी लेविनसन या हेविंघर्स्ट द्वारा निर्दिष्ट कार्यों से अलग हैं। इसी प्रकार, घर छोड़कर जाना पश्चिमी

सभ्यता अथवा आधुनिक शहरी औद्योगिक अर्थव्यवस्था का एक सामान्य लक्षण है। इस प्रकार, प्रौढ़ावस्था और वद्धावस्था के दौरान विकास संबंधी प्रक्रिया व समस्याएं व्यक्तियों के सामाजिक परिदश्य पर निर्भर करती हैं।

14.2 प्रौढ़ावस्था की अवधि

आरंभिक प्रौढ़ावस्था: आरम्भिक प्रौढ़ावस्था का समय बीस वर्ष की आयु के उत्तरोत्तर आरम्भ होता है, वास्तव में यह युवाकाल है। बीस के दशक में युवाओं की प्राथमिकताएं होती हैं, स्वयं का जीवन, नौकरी और परिवार के मध्य स्थापित करना। ये नवयुवक समाज में अधिक स्वतंत्र और उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका के लिए खुद को तैयार करने के प्रयास में सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा प्राप्त करना चाहते हैं।

प्रौढ़ावस्था: बीस और तीस के दशकों को पार कर व्यक्ति चालीस और पचास के दशक में प्रौढ़ावस्था में पहुंच जाता है। प्रौढ़ावस्था को योग्यता, परिपक्वता, उत्तरदायित्व भाव और स्थायित्व से लक्षित किया जाता है। प्रौढ़ावस्था में पहुंच चुके व्यक्तियों की ये महत्वपूर्ण चारित्रिक विशेषताएं होती हैं। यह वह समय होता है जब व्यक्ति कार्यक्षेत्र में मिली सफलताओं, परिवार और सामाजिक जीवन से मिलने वाली संतुष्टि का आनन्द उठाना चाहता है। व्यक्ति अपने बच्चों की सफलता की कामना करता है। पूरा ध्यान स्वास्थ्य, बच्चों के भविष्य, वद्ध होते माता–पिता, खाली समय के सदुपयोग और अपनी वद्धावस्था के लिए योजनाओं के निर्माण पर केन्द्रित हो जाता है। महिलाओं के लिए, 45 और 50 की आयु के मध्य रजोवत्ति (मेनोपॉज) की स्थिति आ जाती है। रजोवत्ति (मेनोपॉज) के साथ महिलाओं में कई बार असहज पीड़ादायी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक लक्षण भी आ जाते हैं। इस अवधि के दौरान पुरुष अपनी सेहत, ताकत, क्षमता और यौन क्षमताओं के प्रति ज्यादा ध्यान देते हैं।

वद्धावस्था: वद्धावस्था की शुरूआत 60 वर्ष की आयु से होती है। इस आयु पर अधिकांश व्यक्ति अपनी नौकरियों से औपचारिक रूप से सेवानिवत हो जाते हैं। उनमें अपने शारीरिक और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता और कभी–कभी चिन्ता विकसित होने लगती है। हमारे समाज में, वद्धों के विषय में आमतौर पर धारणा है कि वे अशक्त, ढीले–ढाले होते हें, उनकी बौद्धिक क्षमता निरन्तर घट रही होती है और उनकी मानसिकता संकीर्ण होती है तथा वे धर्म को नई सार्थकता प्रदान करने वाले होते हैं अधिकांश वद्ध व्यक्ति अपने जीवन साथी को खो देते हैं जिसके कारण उन्हें भावनात्मक सुरक्षा का भी सामना करना पड़ता है।

'कोई व्यक्ति वद्धावस्था से नहीं मरता' यह एक सत्य कथन है। चूंकि वद्धावस्था जीवन के अंतिम बिंदु के नजदीक का पड़ाव है इसलिए मत्यु को वद्धावस्था से जोड़ दिया जाता है। वस्तुतः मत्यु बीमारी, प्रदूषण, तनाव और शरीर से संबंधित अन्य कारणों की वजह से होती है। जीव विज्ञान की दष्टि से, शरीर के कुछ अंग और प्रणालियां नष्ट हो सकती

टिप्पणी

हैं। मनोवैज्ञानिक दष्टि से, व्यक्ति की बौद्धिक और मानसिक क्षमताओं में बड़ी मात्रा में परिवर्तन आना संभव है। व्यक्ति की स्वयं के विषय में धारणा भी परिवर्तित हो जाती है।

आपने ऐसे वद्ध व्यक्ति भी अवश्य देखें होंगे जो अपना जीवन बहुत चुस्ती से व्यतीत करते हैं और सामाजिक क्रियाकलापों में भी बढ़ चढ़कर भाग लेते हैं। ऐसे व्यक्ति रचनात्मक, स्थिर और खुश प्रतीत होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति की मानसिक अथवा शारीरिक क्षमताओं में कमी आए। व्यक्ति अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध अथवा नब्बे के दशक तक भी हष्ट–पुष्ट, चुस्त और सम्माननीय बना रह सकता है। वस्तुतः वद्ध व्यक्तियों के पास अथाह ज्ञान, अनुभव और बुद्धि का भंडार होता है जिनका लाभ समाज उठा सकता है। व्यक्ति की अपेक्षित आयु में वद्धि के कारण समाज का एक बड़ा भाग, वद्ध व्यक्तियों के समूह में परिवर्तित हो रहा है। अतः यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माण में इन पर अधिक ध्यान दिया जाए तथा उन्हें यह अहसास दिलाया जाए कि वे समाज का ही एक भाग हैं।

14.3 प्रौढ़ावस्था और बढ़ती उम्र में होने वाले शारीरिक और बौद्धिक परिवर्तन

सामान्यतः व्यक्ति वद्धावस्था को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में ह्रास का काल मानते हैं। इस भाग में हम बढ़ती उम्र के शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आयामों पर चर्चा करेंगे। बढ़ती उम्र के साथ, कुछ अनिवार्य तथा सभी के साथ होने वाले परिवर्तन घटित होते हैं यथा ऊतकों में रासायनिक परिवर्तन अथवा एडॉपटिव रिजर्व क्षमता का धीरे–धीरे ह्रास। मध्य प्रौढ़ावस्था के उत्तरोत्तर में कुछ बौद्धिक परिवर्तन भी होने लगते हैं। ये परिवर्तन धीरे धीरे और क्रमिक रूप से होते हैं। वद्ध व्यक्तियों में ये ज्यादा स्पष्ट नजर आने लगते हैं।

(क) शारीरिक परिवर्तन

यह देखा गया है कि 30 वर्ष की आयु के पश्चात् अधिकांश की क्रियात्मक क्षमता प्रतिवर्ष 0.8 से 1 प्रतिशत तक की दर से घटती है। कुछ में यह कमी सामान्य होती है, कुछ रोग जनित और कुछ अन्य कारणों यथा तनाव, व्यवसायिक परिस्थितियां, पोषण स्तर और विभिन्न पर्यावरणीय धटकों, से उत्पन्न होती हैं।

बढ़ती उम्र के साथ होने वाले प्रमुख शारीरिक परिवर्तन इस प्रकार हैं।

1. बाह्य परिवर्तन
2. आंतरिक परिवर्तन और
3. ऐन्द्रिक क्षमताओं में परिवर्तन

1. बाह्य परिवर्तन

बाह्य परिवर्तनों से अर्थ है–बढ़ती उम्र के बाह्य लक्षण। त्वचा, बाल, दांत और सामान्य शारीरिक अवस्था से जुड़े परिवर्तन प्रमुखतः नजर आते हैं। त्वचा में अंतर आता है। सर्वप्रमुख है झुर्रियां पड़ना। झुर्रियां पड़ने की प्रक्रिया प्रौढ़ावस्था से आरम्भ हो जाती है। त्वचा मोटी, सख्त और कम लचीली हो जाती है। यह सूखी और ओजहीन व भंगुर हो जाती है। उम्र बढ़ने के साथ, व्यक्ति के बाल सफेद होने लगते हैं और उनकी चमक नष्ट होने लगती है। वे पतले होते जाते हैं। 55 वर्ष की आयु के आसपास, लगभग 65 प्रतिशत पुरुष गंजे हो जाते हैं।

एक अनुमान के अनुसार, 65 वर्ष की आयु तक 50 प्रतिशत व्यक्तियों के सारे दांत गिर जाते हैं अनेक व्यक्तियों के लिए, नकली दांत उनकी जीवन शैली का अंग बन जाते हैं। समय के साथ–साथ, लार का बनना कम हो जाता है। जिसके कारण दांत गिरने का खतरा बढ़ जाता है।

शारीरिक क्षमता: 30 वर्ष की आयु से 80 वर्ष तक और उत्तरोत्तर घटती है। अधिकांश कमजोरी पीठ और पांव की मांसपेशियों में आती है, हाथ की मांसपेशियों पर अपेक्षाकत कम असर पड़ता है। ऊर्जा उत्पादन में उत्तरोत्तर कमी आती है। हड्डियां नाजुक व भुरभुरी होती चली जाती हैं और आसानी से टूट जाती हैं। उम्र के साथ साथ केल्शियम डिपोजिट और जोड़ों की समस्याएं भी बढ़ जाती हैं। मांसपेशियों के ऊतकों के आकार व क्षमता में कमी आती है। मांसपेशियों के तन्तुओं में चर्बी की मात्रा बढ़ने से उम्र के साथ मांसपेशियों को स्वस्थ बनाए रखना और कठिन हो जाता है। इसका एक कारण समाज द्वारा वद्धों को अपेक्षाकत कम चुस्त भूमिका में ढकेलना भी है। व्यायाम के माध्यम से ताकत बनाए रखना संभव है और कई बार तो इसके माध्यम से प्रयोग में न आने वाली मांसपेशियां पुनः सक्षम बन जाती हैं। वद्धावस्था में सामान्य शारीरिक भंगिमा में परिवर्तन अधिक नजर आते हैं। दांत गिरना, गंजापन और बाल सफेद होना, त्वचा पर झुर्रियां पड़ना, तथा शारीरिक क्षमता मे कमी, इन सभी का एक सम्मिलित नकारात्मक प्रभाव व्यक्ति के स्वाभिमान और आत्मविश्वास पर पड़ता है।

2. आंतरिक परिवर्तन

आंतरिक परिवर्तन से अभिप्राय बढ़ती उम्र के उन लक्षणों से है जो नजर नहीं आते या स्पष्ट नहीं होते। हमें बढ़ती उम्र के साथ श्वसन प्रणाली, जठरांत्र प्रणाली, हदय प्रणाली और केन्द्रीय तंत्रिका प्रणाली में होने वाले परिवर्तनों की जांच करनी चाहिए।

श्वसन प्रणाली: उम्र बढ़ने पर श्वास लेने की क्षमता में कमी आती है। वायु अंदर लेने के लिए वद्ध व्यक्ति के फेफड़े युवा व्यक्ति की तुलना में कम विस्तत होते हैं ऑक्सीजन की कमी के कारण वद्ध व्यक्ति सुस्त, कम जागरूक और कम क्षमतावान हो जाता हैं यह ह्रास सामान्य वद्धावस्था की प्रक्रिया का भाग है।

टिप्पणी

जठरांत्र प्रणाली: आयु बढ़ने पर काटने और चबाने की क्षमता घटती है, पाचन एंजाइम का उत्पादन कम होता है, आमाशीय और आंतों की गतिशीलता घट जाती है व भूख कम हो जाती है।

हदाहिका प्रणाली: हदय संबंधित प्रणाली, जिसमें हदय और रक्तवाहिकाएं सम्मिलित हैं, पर सामान्य बढ़ती उम्र का प्रभाव अपेक्षतया धीरे पता चलता है। उम्र बढ़ने के साथ–साथ रक्तवाहिकाओं का लचीलापन और रक्त ऊतकों का उत्पादन कम हो जाता है। हदय को आराम की स्थिति में वापस आने में लगने वाला समय बढ़ जाता है और रक्त के प्रवाह में धमनीय व्यवधान भी देखा जाता है। अनेक वद्ध व्यक्तियों को उच्च रक्तचाप की समस्या होती है। हालांकि, स्वस्थ वद्ध व्यक्तियों का रक्तचाप, स्वस्थ युवा व्यक्तियों के समान ही देखा गया है।

केन्द्रीय तंत्रिका प्रणाली: केन्द्रीय तंत्रिका प्रणाली में, उम्र के साथ सभी व्यक्तियों में आने वाले कुछ परिवर्तन दिखाई देते हैं। धमनीय और शिराओं के प्रवाह की दर में कमी आती है। 60 वर्ष की आयु के आसपास, प्रमस्तिष्कीय रक्त प्रवाह में भी कमी आनी आरम्भ हो जाती है। आक्सीजन और ग्लूकोस उपभोग में भी कमी आती है। कोशिकाओं की संख्या और कोशिकान्त (सेल एंडिग) में भी कमी आती है। सबसे स्पष्ट परिवर्तन अनुक्रियाओं का धीमा होना है।

3. ऐन्द्रिक क्षमताओं में परिवर्तन

बढ़ती उम्र के साथ, ऐन्द्रिक क्षमताओं का क्रमिक ह्रास होता है। हम बाहरी दुनिया के साथ अपनी इन्द्रियों के माध्यम से ही सम्पर्क साधते हैं। किसी भी इन्द्रिय क्षमता का नुकसान गहन मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाल सकता है।

दष्टि: बढ़ती उम्र दष्टि सम्बन्धी अनेक समस्याएं साथ लाती है। आंखों के लैंस का लचीलापन निरन्तर कम होता जाता है। पुतलियां छोटी हो जाती हैं और उनका आकार भी बिगड़ जाता है। पलकें शिथिल झुकी हुई हो जाती हैं। रंगों की पहचान कम होने लगती है। मोतियाबिंद और नजर कमजोर होना, वद्धों में सामान्यतः पाया जाता है। मोतियाबिंद से ग्रस्त व्यक्तियों को धुधंला नजर आता है। इसके कारण भी सामान्य दष्टि कमजोर पड़ती है।

श्रवण/सुनना: बीस वर्ष की आयु के आस–पास व्यक्ति के सुनने की क्षमता सर्वाधिक होती है। उसके बाद इसमें कमी आने लगती है। कम होती श्रवण क्षमता पर अक्सर ध्यान नहीं जाता। हालांकि सुनने की समस्या का समाधान हेयरिंग ऐड है।

अन्य इन्द्रियां: स्वाद और सूंघने की इन्द्रियां बढ़ती उम्र के साथ शिथिल पड़ जाती हैं। इसकी वजह से वद्ध व्यक्ति की भूख और पोषक तत्वों की आवश्यकता में कमी आती है। आपने अक्सर देखा होगा कि अनेक वद्ध व्यक्ति अत्याधिक मीठे या मसालेदार भोजन की मांग करते हैं। इसका कारण यह है कि हमारे चार आधारभूत स्वाद मीठा, कड़वा,

खट्टा और नमकीन, सामान्यतः इनकी संवेदनशीलता न्यून हो जाती है। स्पर्श संबंधी संवेदना जन्म से लेकर 45 वर्ष की आयु तक बढ़ती है और तत्पश्चात् तेजी से घटती है।

14.4 प्रौढ़ावस्था और बढ़ती उम्र के दौरान होने वाले संज्ञानात्मक परिवर्तन

'संज्ञान' शब्द से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके माध्यम से सूचना एकत्रित, संग्रहीत और उपयोग की जाती है। इस भाग में, संज्ञान के चार प्रमुख आयामों– स्मरण शक्ति, ज्ञान अर्जन, एकाग्रता और बुद्धि की प्रौढ़ावस्था और बढ़ती उम्र के संबंध में चर्चा की जाएगी।

(क) स्मरण शक्ति

स्मरणशीलता संज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्षों में से एक है। स्मरणशीलता से अभिप्राय 'सूचनाओं को बाद में प्रयोग के लिए संग्रहीत करने और ऐसी सूचनाओं को पुनः प्रयुक्त करने की प्रक्रिया समझा जाता है।

(ख) वद्धों की स्मरण शक्ति

बढ़ती उम्र के साथ स्मरण क्षमता पर अनेक कारणों से प्रभाव पड़ता है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित हैं:

(1) स्मरण क्षमता के संबंध में धारणा

अपनी स्मरण क्षमता के प्रति वद्ध व्यक्तियों की धारणा और रुख का उनकी स्मरण शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। विभिन्न अनुसंधानों द्वारा स्मरण क्षमता पर विश्वास, समझ, धारणा और ज्ञान के प्रभाव का पता चलता है। प्रश्नकर्ता अक्सर प्रतिवादियों से पूछता है कि वह कितनी बार नाम और घटनाएं भूल जाते हैं, भूलने के प्रति वे कितने चिंतित हैं, स्मरण शक्ति बढ़ाने के विषय में वे क्या जानते हैं और याद करने के दौरान वे क्या नीतियां अपनाते हैं। वद्ध व्यक्तियों को युवाओं की अपेक्षा स्मरण शक्ति से जुड़ी ज्यादा समस्या होती है। वद्धों में एक सामान्य भाव पाया जाता है कि "मैं बूढ़ा हो रहा हूँ।" वद्ध व्यक्ति अक्सर बातें भूल जाने की शिकायत करते हैं।

(2) स्मरण संबंधी नीतियों का प्रयोग

अच्छी स्मरण शक्ति के लिए नीतियों के प्रयोग की आवश्यकता होती है। स्मरण संबंधी नीतियों के सही प्रयोग से व्यक्ति अपनी स्मरण क्षमता बढ़ा सकता है। स्मरण नीति का एक उदाहरण है जिन चीजों को आप खरीदना चाहते हैं उनसे संबंधित किसी जानी पहचानी चीज को स्वयं के साथ दोहराते रहना। मान लीजिए, यदि आप किसी व्यक्ति का नाम याद करना चाहते हैं, तो आप उस व्यक्ति को किसी चर्चित आकति/व्यक्ति से

जोड़कर याद रख सकते हैं। आप स्मरण सहायकों का भी प्रयोग कर सकते हैं जैसे डायरी, परचून की दुकान से खरीददारी के लिए वस्तुओं की सूची। हम अक्सर ऐसी किसी न किसी नीति का जब तब प्रयोग करते रहते हैं किन्तु इस तथ्य से अज्ञात होते हैं। अपने दैनिक जीवन में, वद्ध व्यक्ति दोहराने या संबंध जोड़ने की नीति की अपेक्षा डायरियों और खरीददारी की सूची आदि का अधिक प्रयोग करते हैं।

(3) वद्धों की जीवन शैलियां

वद्ध व्यक्ति प्रतिदिन जिस प्रकार के कार्य कलाप करते हैं, उनका भी स्मरण शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। जो वद्ध व्यक्ति शतरंज या ताश खेलने जैसी दैनिक गतिविधियों में व्यस्त रहते हैं वे स्मरण शक्ति और तर्क संगत कार्य क्षमता से जुड़े कुछ कार्य अन्य न खेलने वाले वद्धों की अपेक्षा बेहतर ढंग से करते हैं। संज्ञान प्रदर्शन क्षमता पर प्रभाव डालने वाली जीवन शैली का एक अन्य आयाम है रोजमर्रा के जीवन में नियमितता होना। सोने का निर्धारित समय, नियमित व्यायाम, दिन प्रतिदिन के कार्यों की एक नियमित समय सारणी के माध्यम से व्यक्ति की बौद्धिक क्रियाविधि बनाए रखने में सहायता मिलती है।

(ग) ज्ञान अर्जन

ज्ञान अर्जन में नए संबंधों का निर्माण सम्मिलित है। जिसका अर्थ है विश्व के संबंध में सामान्य नियमों और ज्ञान का अर्जन करना। यह माना जाता है कि ज्ञान अर्जित करने की क्षमता प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की अपेक्षा मध्य प्रौढ़ावस्था में ज्यादा खराब होती है। क्या वद्ध व्यक्ति नई सूचनाएं और कला कौशल अर्जित कर सकते हैं? क्या वे नए व्यवसाय अपनाने का प्रयास कर सकते हैं? ऐसे प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि वद्धों की ज्ञान अर्जन की क्षमता में कोई कमी नहीं आती। अन्य कारणों जैसे उत्साह वर्द्धन की कमी, आत्मविश्वास की कमी, परीक्षा संबंधी चिंता, व्यग्रता आदि की वजह से ज्ञान अर्जन संबंधी विभिन्न कार्य वे कम बेहतर ढंग से प्रतिपादित करते हैं।

यदि वद्ध व्यक्तियों को अधिक समय मिले या वे परीक्षाओं की समय सीमा स्वयं निर्धारित कर सकें तो वे युवा व्यक्तियों के लगभग ही ज्ञान अर्जन क्षमता का प्रदर्शन कर सकते हैं। जब उनके समक्ष समय सीमा का दबाव नहीं होता और प्रश्न स्पष्ट व सहज रूप में रखे जाते हैं तो वे बेहतर प्रदर्शन करते हैं।

(घ) एकाग्रता

एकाग्रता शब्द उस प्रक्रिया को संबोधित करता है जिस प्रकार हम किए जाने वाले कार्य पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। अलग–अलग व्यक्तियों का एकाग्रता फलक भिन्न होता है। यदि एकाग्रता फलक बहुत छोटा है तो बहुत सारी सूचनाएं छूट जाती हैं। एकाग्रता फलक की दष्टि से संभव है कि वद्ध व्यक्तियों और युवाओं में ज्यादा अंतर न हो। किन्तु, वद्धों का ध्यान भंग किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप के कारण आसानी से हो जाता है। प्रशिक्षण के माध्यम से, एकाग्रता में सुधार संभव है।

(च) बुद्धि

जैसा कि पहले भी कई बार बताया जा चुका है कि वद्धावस्था से जुड़ी अनेक धारणाएं आधे–अधूरी जानकारियां या गलत अवधारणाओं के कारण जन्म लेती हैं। बुद्धि परीक्षण में वद्ध व्यक्ति कैसा प्रदर्शन करते हैं? अधिकांश बुद्धि परीक्षणों में प्रदर्शन की तीव्र गति की आवश्यकता होती है। हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि वद्ध व्यक्ति प्रतिक्रिया करने में अधिक समय लगाते हैं। इस प्रकार बौद्धिक परीक्षणों में कम बेहतर प्रदर्शन का कारण धीमी प्रतिक्रिया है न कि कमतर बौद्धिक क्षमता। आयु के साथ सामान्य ज्ञान में कमी नहीं आती। वद्धों में अक्सर जटिल निर्णय लेने की क्षमता में कमी और कार्य निष्पादन की धीमी गति देखी जाती है। वद्ध व्यक्तियों में शायद ही कभी वाक् चातुर्य, सामाजिक जागरूकता और अनुभव के प्रयोग संबंधी कोई कमी देखी गई है।

प्रौढ़ावस्था और बढ़ती उम्र में बुद्धि का संबंध विभिन्न प्रकार की चुनौतियों से परिपूर्ण दिनप्रतिदिन के कार्यों और घटनाओं से जूझने की व्यक्ति की क्षमता से जोड़ा जाता है। वद्ध व्यक्तियों के सामान्य बुद्धि कौशल को जांचने के लिए मानचित्रों को समझना, स्तरों को समझना, फार्म भरना, चार्ट, संवाद, टी.वी. कार्यक्रमों को समझना, खरीददारी करना, भीड़–भाड़ के दौरान वाहन चलाना और अन्य अनेक दैनिक कार्यों को आधार बनाया जा सकता है।

आपको याद होगा कि हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि वद्ध व्यक्ति दबाव के अभाव में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। व्यक्ति के स्वास्थ्य को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। स्वस्थ व्यक्ति और खुशहाल व चुस्त जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों में वद्धावस्था में शून्य या बहुत कम बौद्धिक क्षमता का ह्रास होता है।

पाठगत प्रश्न 14.1

1. वद्ध व्यक्तियों की स्मरण क्षमता प्रभावित करने वाले कारकों की सूची बनाइए।

   _____

   _____

2. वद्ध व्यक्तियों की दैनिक बौद्धिक क्षमता का पता कैसे लगाया जा सकता है?

   _____

   _____

14.5 वद्ध अवस्था में समायोजन की समस्याएं

उम्र बढ़ने की प्रक्रिया के साथ व्यक्ति कैसे समायोजन करता है? अपनी वर्तमान जीवन परिस्थितियों का सामना करने के लिए विभिन्न व्यक्ति विभिन्न नीतियां अपनाते हैं कुछ

वद्ध व्यक्ति स्वयं को चुस्त दुरुस्त बनाए रखने के लिए सामाजिक भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों का आनन्द उठाते हैं और प्रसन्नतापूर्वक विशिष्ट व्यवसायिक गतिविधियों में भाग लेते हैं जबकि कुछ समाज से अलग–अलग, कटे हुए रहते हैं। सक्रियता के स्तर और कार्यकलापों की प्रकति का निर्धारण वद्धों के स्वास्थ्य, सामाजिक–आर्थिक स्तर और पारिवारिक स्तर द्वारा होता है। आइए, इसी से जुड़ी कुछ समस्याओं का अध्ययन करें।

(क) वद्ध व्यक्तियों की खराब छवि संबंधी समस्याएं

सामान्यतः वद्ध व्यक्ति स्वयं को उतना पसंद नहीं करे जितना कि युवा व्यक्ति करते हैं। वद्ध पुरुषों में वद्ध महिलाओं की तुलना में आत्म विश्वास की कमी ज्यादा होती है। इसका कारण यह समझा जा सकता है कि पुरुषों का आत्मविश्वास उनकी व्यवसायिक उपलब्धियों से जुड़ा होता है जबकि महिलाएं अपनी पारिवारिक परिस्थतियों से ही आत्म सम्मान का भाव अर्जित करती हैं। अतः जब बद्धावस्था में पुरुष सेवानिवत हो जाते हैं या फिर उनका व्यवसाय छूट जाता है, उनका आत्म सम्मान गिर जाता है। जबकि दूसरी तरफ महिलाएं अपने पारिवारिक क्रियाकलापों के माध्यम से आत्म सन्तुष्टि प्राप्त करती रहती हैं।

(ख) प्रसन्नता

जब पूछा जाता है ''क्या आपका जीवन रोमांचक है?'' अधिकांश वद्ध पुरुष और महिलाएं कहती हैं कि उनके जीवन में रोमांच जैसे भाव न के बराबर हैं और उनका जीवन बेहद नीरस है जिसमें कुछ भी नया होने की संभावना नहीं है। हालांकि यह निर्णय लेने से पूर्व कि उम्र बढ़ने के साथ जीवन नीरस होता जाता है, हमें अन्य अनेक तथ्यों पर भी ध्यान देना होगा जैसे कि एक वद्ध के रूप में व्यक्ति स्वयं के विषय में क्या सोचता है और उसे जीवन से किस प्रकार की आशाएं हैं।

(ग) आर्थिक समस्याएं

अपना व्यवसाय चलाने वाले व्यक्ति या फिर वे जिनके अपने पारिवारिक व्यवसाय हैं, वे अंतिम समय तक अथवा अक्षम होने तक काम करते रहते हैं। जो और लोगों के लिए काम करते हैं वे एक निश्चित आयु के पश्चात सेवा निवत हो जाते हैं। सेवानिवति के प्रति व्यक्ति के नजरिए पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है जैसे, आय, शैक्षणिक स्तर और व्यावसायिक स्तर।

व्यक्तियों के लिए सेवानिवत्ति के साथ समायोजन करना अक्सर कठिन होता है। सेवानिवति के कारण एक नई जीवन शैली के साथ समायोजन करना होता है जिसमें कम आय, कम गतिविधियां और ज्यादा खाली समय होता है। सेवानिवत्ति के कारण पुरुषों में अत्याधिक तनाव पैदा हो जाता है क्योंकि हमारे समाज में पुरुषों की पहचान मुख्यतः उनकी नौकरियों से जुड़ी होती है। नौकरी के चले जाने पर आत्म–सम्मान और

आत्म–मूल्य में कमी आती है। सेवानिवत्त व्यक्तियों को आर्थिक समस्याओं रोग, और अकेलेपन के भाव के कारण सेवानिवत्ति के साथ समायोजन करने में कठिनाई आती है। सेवानिवत्त व्यक्तियों को उनकी भूमिकाओं, व्यैक्तिक और सामाजिक संबंधों, उपलब्धि में आए अनेक परिवर्तनों के साथ समन्वय करना पड़ता है। फिर भी, इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति पर सेवानिवत्ति का नकारात्मक प्रभाव ही पड़ता है। कुछ मामलों में, संभव है कि इसका व्यक्ति के आत्मसम्मान और जीवन संतुष्टि भाव पर कोई भी बुरा प्रभाव न पड़े। कुछ व्यक्तियों का स्वास्थ्य सेवानिवत्ति के पश्चात सुधर सकता है। सेवानिवत्त व्यक्तियों के पास सामाजिक और अपनी अभिरुचि सम्बन्धी गतिविधियों के लिए ज्यादा समय होता है बशर्ते उनेक पास पर्याप्त आर्थिक साधन हो और उनका स्वास्थ्य भी इन कार्यों के अनुकूल हों।

(घ) मत्यु

वैसे तो वद्ध व्यक्तियों को मत्यु से डर नहीं लगता। लेकिन, उन्हें मरने की प्रक्रिया–दर्द के साथ मत्यु या अकेले मरना–से बहुत ज्यादा डर लगता है। मत्यु से जुड़ी उनकी भावनाएं जीवन की विशिष्ट घटनाओं का परिणाम भी हो सकती हैं जैसे घर से नर्सिंग होम जाना, गिरता स्वास्थ्य, या जीवन साथी का चले जाना। अतः मत्यु से जुड़े डर को वर्तमान जीवन परिस्थितियों, व्यक्ति की अपनी मूल्य प्रणाली और मत्यु के प्रति उसकी सोच, इन सभी रोशनी में देखना चाहिए।

(च) अवसाद (डिप्रेशन)

वद्ध व्यक्तियों में अवसाद के दो प्रमुख लक्षण देखे जाते हैंः अवसाद (उदासी, अपराध बोध, निराशा, असहाय भाव) और संबंधित व्यवहार (हार मान लेना, भावशून्यता)। अनेक वद्ध अपने अवसाद को कथित समस्याओं के माध्यम से दर्शाते हैं (भूख कम लगना, नींद न आना)। जैविक कारणों (बायोकैमिकल गड़बड़ियां) और सामाजिक/सांस्कतिक कारणों (वद्ध व्यक्तियों की उपयोगिता के संबंध में सांस्कतिक दष्टिकोण, अकेलापन, सेवानिवत्ति, संस्थानों में भेज देना) दोनों ही कारणों से वद्धों में अवसाद उत्पन्न होता है। अन्य कारणों यथा कामुकता, भौतिक सम्पदाओं में कमी, हार, आदि का भी अवसाद में योगदान होता है।

14.6 समस्याओं का सामना करना

बढ़ती उम्र का सामना कैसे करें? अपने जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए विभिन्न व्यक्ति विभिन्न नीतियां अपनाते हैं। कुछ प्रभावशाली नीतियां इस प्रकार हैं–

1. वद्धों के व्यवहार में लचीलापन विकसित करना होगा ताकि वे जीवन के दबावों और वद्धावस्था की समस्याओं का सामना कर सकें।
2. उन्हें यह समझना होगा कि उन्हें अपने जीवन का सामना करने के लिए नए तरीके तलाशने होंगे।

टिप्पणी

3. वद्ध व्यक्तियों को अधिक से अधिक सूचनाएं एकत्र करने और समस्या सुलझाने का प्रयास करना चाहिए न कि अकेले में सबसे कट कर रहना चाहिए।

4. आत्मविश्वास, आत्म निर्भरता बढ़ाना, अपनी क्षमताओं और कमजोरियों के प्रति स्वस्थ सोच विकसित करना, सामना करने के प्रभावी कला–कौशल को सीखना और उसका अभ्यास करना तथा वातावरण के प्रति सचेत रुख अपनाना ये कुछ महत्वपूर्ण तरीके हैं जिनके द्वारा वद्धावस्था में स्वस्थ समायोजन किया जा सकता है।

5. जीवन की समस्याओं से जूझने का एक अन्य तरीका है सामाजिक दायरा बढ़ाना। विभिन्न सामूहिक गतिविधियों में भाग लेने से जैसे क्लबों और विशिष्ट संगठनों से जुड़ना ताकि अनौपचारिक सामाजिक सम्पर्क कायम हो, ये सब भी वद्धों के लिए सहायक सिद्ध होते हैं। अपने आस–पड़ोस या कहीं और अपनी ही आयु के लोगों का एक सामाजिक तानाबाना स्थापित करने से वद्ध व्यक्ति अपनी जीवन परिस्थितियां अन्य के साथ बांट सकते हैं और अपनी समस्याओं को भावुकतापूर्ण अभिव्यक्ति दे सकते हैं। ऐसे सामाजिक तानाबाना के माध्यम से, व्यक्ति को बिना किसी शर्त के अनुमोदन भाव प्राप्त होता है। वह गुप्त बातें बांट सकता है। नए अनुभव प्राप्त कर सकता है और विश्वासपूर्ण संबंध कायम कर सकता है।

6. अपने नाती–पोतों के साथ घुलने–मिलने से अनेक वद्ध व्यक्तियों की व्यैक्तिक तथा भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। दादा–दादी महत्वपूर्ण आदर्श व्यक्तियों की भूमिका निभा सकते हैं। वद्ध व्यक्ति इन भूमिकाओं के माध्यम से भावनात्मक परिपूर्णता का अनुभव करते हैं और अपने नाती–पोतों की उपलब्धियों से आत्म सन्तुष्ट होते हैं।

14.7 वद्धों के लिए मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप

हम सभी को अत्यधिक तनाव की स्थिति में दूसरों (मित्र, रिश्तेदार, सहयोगी) की मदद की आवश्यकता होती है। इस भाग में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि वद्धों की समस्याओं से निपटने और उन्हें जीवन का सामना करने योग्य बनाने के लिए किस प्रकार की मनोवैज्ञानिक सहायता आवश्यक है।

वद्धों के प्रति हमारा मुख्य लक्ष्य है कि उनके जीवन को बेहतर बनाया जाना है। इसके लिए उपयुक्त स्रोतों की रचना के लिए प्रयास करने होंगे। मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप के महत्वपूर्ण उद्देश्य हैः–

1. व्यक्ति के व्यवहार को समझना
2. दुश्चिंता या अवसाद से छुटकारा दिलाना
3. वर्तमान परिस्थिति को स्वीकार करना

टिप्पणी

4. स्वयं की देखभाल के गुण बढ़ाना
5. चुस्त जीवनशैली को बढ़ावा देना
6. आत्मनिर्भरता विकसित करना
7. व्यक्ति की कमजोरियों और समस्याओं को स्वीकार करना
8. अन्तरवैयक्तिक संबंध सुधारना

ऐसे बहुत से मनोवैज्ञानिक तरीके हैं जिनकी आवश्यकता वद्ध व्यक्तियों के लिए होती है और वे उपयोगी भी सिद्ध हुए हैं। उनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जा रहा है:

(क) वद्ध व्यक्तियों की वैयक्तिक या सामाजिक समस्याएं हल करने के लिए उन्हें पेशेवरों या परिवार, मित्रों या पड़ोसियों से सहायता मिल सकती है उनकी अनेक समस्याएं तो संयुक्त परिवार के सदस्यों द्वारा ही सुलझ सकती हैं। अपने संसाधनों के अनुरूप, वद्ध व्यक्ति अपने निजी और पारिवारिक मसलों पर पेशेवर व्यक्तियों की मदद ले सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों के साथ काउंसलिंग के द्वारा व्यक्ति जीवन के तनावपूर्ण अवसरों यथा सेवानिवत्ति, जीवनसाथी की मत्यु, और आर्थिक असुरक्षा के लिए खुद को तैयार कर सकता है। उन्हें स्वयं के प्रति व दुनिया के प्रति उत्साहपूर्ण रुख अपनाने तथा सभी विकल्प खुले रखने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

(ख) संज्ञानात्मक व्यवहार संबंधी सहायता

वद्ध व्यक्तियों को दूसरों से स्वयं के विषय में वास्तविक प्रतिपुष्टि कम मिलती है जिसके कारण 'सोच संबंधी विकार' जन्म लेते हैं। स्वयं को असहाय समझने का भाव डर, गुस्सा, झुंझलाहट और अवसाद पैदा करता है। संज्ञान चिकित्सा के द्वारा तर्कहीन विचारों के स्थान पर तर्कपूर्ण विचारों को स्थापित करना संभव है। शांत होने के प्रशिक्षण से दुष्चिंता और तनाव के भाव कम होते हैं। संज्ञान–व्यवहार संबंधी हस्तक्षेपों से वद्धों में अवसाद, दुष्चिंता, याददाश्त की कमी, व प्रतिक्रिया देने की गति जैसी समस्याओं को हल करने में काफी मदद मिलती है।

(ग) व्यवहार संबंधी हस्तक्षेप

व्यवहारिक हस्तक्षेप सकारात्मक और नकारात्मक प्रोत्साहनों पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए, वद्धों को अपेक्षित स्वयं की देखभाल के व्यवहार के सकारात्मक प्रोत्साहन जैसे मौखिक या वस्तु रूप में पुरुस्कार दिया जाए जबकि अनपेक्षित उग्र व्यवहार के लिए नकारात्मक प्रोत्साहन (पुरुस्कारों से वंचित करना) दिया जाए। यह अपेक्षाकत आसान और कम खर्चीला तरीका है लेकिन इसे सही ढंग से प्रयोग करने के लिए अत्यधिक निपुणता आवश्यक है।

(घ) परिवार चिकित्सा

परिवार चिकित्सा जीवन की विभिन्न समस्याओं, यथा सेवानिवत्ति, दादी–दादा बनना, वयस्कों और वद्धों के मध्य पारिवारिक झगड़े, वद्धों की बीमारियों में देखभाल, और वद्धों

टिप्पणी

को संस्थान भेजने संबंधी पारिवारिक निर्णय; समायोजन में सहायता करती है। यदि सही तरीका अपनाया जाए तो परिवार चिकित्सा, प्रेम, अपनापन और एक–दूसरे पर निर्भरता जैसी भावनाओं को और मजबूत बनाती है।

(च) सामाजिक हस्तक्षेप

व्यक्ति को बदलने के साथ हमें उसके आस–पास के माहौल को भी बदलने की आवश्यकता है। व्यक्ति के पारिवारिक माहौल, दैनिक क्रियाकलापों, आस–पड़ोस और समुदाय पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। सामाजिक हस्तक्षेप के द्वारा वद्धों के प्रति व्यक्तियों की सोच में अंतर लाया जाता है और समुदाय, परिवार तथा मित्रों पर उनके भरोसे को बढ़ाया जाता है।

पाठगत प्रश्न 14.2

1. वद्ध अवस्था में अवसाद (डिप्रेशन) के क्या कारण हैं?

   _____

   _____

2. तीन मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेपों/सहायताओं के नाम बताओ।

   _____

   _____

आपने क्या सीखा

- आयु उन प्रमुख श्रेणियों में से एक है जिनके आधार पर व्यक्तियों को बांटा जाता है। वयस्कता के हर स्तर पर विशिष्ट आवश्यकताएं और मांगें होती हैं जिन्हें पूरा करने पर जीवन का स्वस्थ संतुलन बना रहता है। युवावस्था के दौरान, एक अच्छी नौकरी और परिवार की सुरक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। अधेड़ावस्था के दौरान, व्यक्ति एक सफल नौकरी और पारिवारिक जीवन से संतुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करता है। वद्धावस्था में, व्यक्ति का ध्यान शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, तथा भावनात्मक व आर्थिक सुरक्षा की ओर अधिक होता है।
- बढ़ती उम्र के साथ व्यक्ति के मस्तिष्क और शरीर में आने वाले परिवर्तन प्रति व्यक्ति भिन्न होते हैं। अनेक तथ्य जैसे आहार, धूम्रपान, अधिक शराब का सेवन, तनाव, ये सब व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। वद्धावस्था संबंधी समाज की अनेक मिथ्या धारणाएं गलत सूचनाओं या पूर्वाग्रहों पर आधारित होती हैं।

हालांकि बढ़ती उम्र के साथ व्यक्ति का क्रमिक ह्रास होता है किन्तु यह जरूरी नहीं है कि इसके कारण वह शारीरिक या मानिसक रूप से अक्षम और अयोग्य हो जाए। साथ ही, मनुष्य की उम्र बढ़ने संबंधी प्रारम्भिक अध्ययन अस्पतालों या मानसिक रोगियों पर किए गये थे। कुछेक अध्ययन ही ऐसे थे जो सामान्य जीवन व्यतीत करने वाले चुस्त दुरुस्त वद्ध व्यक्तियों पर किए गए थे। यह समझना आवश्यक है कि कौन से शारीरिक परिवर्तन उम्र बढ़ने के कारण होते हैं और कौन से पर्यावरणीय तत्वों यथा बीमारी, आहार, कम सक्रिय जीवन या कम व्यायाम के कारण उत्पन्न हुए हैं। अधिकांश वद्ध व्यक्तियों में रोजमर्रा के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त क्रमिक क्षमताएं होती हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि प्रौढ़ावस्था से ही व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति सकारात्मक रवैया विकसित करे।

- उम्र के साथ इन्द्रियों की क्षमताएं घट जाती हैं इन्द्रियों की कम क्षमता के कारण वद्ध व्यक्ति अनेक सामाजिक गतिविधियों में भाग नहीं ले पाता। परिणामस्वरूप, धीरे–धीरे वे अपनी निजी रुचियों से भी मुंह मोड़ने लगते हैं और अकेलापन महसूस करने लगते हैं
- बढ़ती उम्र के साथ, संभव है कि कुछ मानसिक क्षमताओं में भी कमी आए जैसे प्रतिक्रिया समय, जटिल निर्णय लेना और पुरानी बातों को याद करना। बौद्धिक क्षमता लगभग समान रहती है। यदि अधिक समय दिया जाए और स्वयं नियंत्रित किया जाए तो वद्ध व्यक्ति समयबद्ध परिस्थितियों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन करते हैं।
- स्वाभिमान या व्यक्ति स्वयं को कितना पसंद करता है यह इस पर निर्भर करता है कि उसकी व्यक्तियों के विषय में सोच क्या है।
- महिलाएं पारिवारिक परिस्थितियों से और पुरुष व्यवसायिक परिस्थितियों से आत्म सम्मान के भाव प्राप्त करते हैं।
- उम्र के साथ प्रसन्नता या उत्साह भाव घट जाता है। हालांकि अन्य तथ्य जैसे स्वास्थ्य, स्वयं के प्रति व्यक्ति का नजरिया, जीवन परिस्थितियां भी प्रसन्नता भाव निर्धारित करने में महत्वपूर्ण होते हैं।
- अधिकांश व्यक्तियों के लिए, सेवानिवत्ति एक कठिन और तनावपूर्ण अवसर होता है। जबकि कुछ, सेवानिवत्ति को भी सकारात्मक ढंग से अपनाते हैं क्योंकि अब वे अपनी अभिरुचियों और खाली समय की अन्य गतिविधियों के लिए ज्यादा समय प्रदान कर सकते हैं।
- जीवन साथी की मत्यु होने पर वद्ध व्यक्ति अवसाद, सामाजिक समर्थन की कमी और शारीरिक समस्याओं का सामना करते हैं। अकेलापन ऐसे लोगों की प्रमुख समस्या है।

- वद्ध व्यक्ति बायोकैमिकल परिवर्तनों, वैयक्तिक अक्षमताओं और सामाजिक/सांस्कतिक कारणों से भी अवसाद का शिकार होते हैं। उनका अवसाद शारीरिक लक्षणों से भी प्रकट होती है।
- बढ़ती उम्र के साथ, लोग परिस्थितियों का सामना करने का कौशल विकसित कर लेते हैं जिसके माध्यम से वे वद्धावस्था का सामना ठीक प्रकार कर पाते हैं। वद्ध व्यक्ति युवाओं की अपेक्षा तनाव का सामना अधिक धैर्य के साथ करते हैं।
- विभिन्न स्तरों–व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेपों से वद्ध व्यक्ति दैनिक जीवन से जुड़ी चुनौतियों का सामना बेहतर ढंग से करते हैं। ये हस्तक्षेप वद्धों के व्यक्तिगत विकास और उनके जीवन की गुणवत्ता सुधारने में सहायक होते हैं। वद्ध व्यक्ति स्वयं की और परिवार के अन्य सदस्यों की तनाव, विचारों के टकराव, दुश्चिंता, अवसाद और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना बेहतर ढंग से करते हैं। मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेपों का प्रयोग वद्धों की आवश्यकताओं, रुचियों, क्षमताओं और जीवन के उद्देश्यों के प्रति किया जाना चाहिए।

पाठांत प्रश्न

1. प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए प्रमुख विकासात्मक कार्य कौन से हैं?
2. बढ़ती उम्र के साथ आने वाले कुछ बाहरी परिवर्तनों का विवरण दें।
3. वद्धावस्था में हदाहिका प्रणाली पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. वद्धावस्था में कौन सी आर्थिक समस्याएं आती हैं।
5. मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेपों के प्रमुख उद्देश्य क्या है?
6. संक्षित टिप्पणियां लिखें:

   (i) जीवन साथी से विछोह

   (ii) वद्धों के लिए सामाजिक हस्तक्षेप

   (iii) वद्धावस्थ्था में अवसाद/डिप्रेशन

   (iv) आयु के साथ होने वाले केन्द्रीय तंत्रिका प्रणाली परिवर्तन

   (v) परिवार चिकित्सा

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

14.1

1. (क) समस्या शक्ति संबंधी विश्वास (ख) स्मरण नीतियों का प्रयोग

   (ग) वद्धों की जीवन शैलियां

2. इसका अनुमान उनकी सड़क मानचित्रों को पढ़ने, स्तर समझने, फार्म भरने, संवाद समझने, खरीददारी करने और रोजमर्रा के काम करने की क्षमता से लगाया जा सकता है।

14.2

1. जैविक कारण जैसे बायोकैमिकल असंतुलन और सामाजिक सांस्कतिक कारण जैसे सेवानिवत्ति, अकेलापन आदि के कारण वद्धावस्था में अवसाद आ जाता है।

2. (i) मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं से सहायता लेना

   (ii) पविार चिकित्सा

   (iii) सामाजिक हस्तक्षेप

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. भाग 14.1 और 14.2 देखें
2. भाग 14.3 देखें
3. भाग 14.3 देखें
4. भाग 14.6 देखें
5. भाग 14.8 देखें
6. (i) भाग 14.6 देखें

   (ii) भाग 14.8 देखें

   (iii) भाग 14.6 देखें

   (iv) भाग 14.5 देखें

   (v) भाग 14.6 देखें

टिप्पणी

15

वैयक्तिक भिन्नताओं को समझना: बुद्धि का प्रकरण

अपने आस–पास के लोगों की किसी भी चारित्रिक विशेषता के विषय में विचार करो और आप तुरन्त यह समझ जाएंगे कि वे एक दूसरे से अलग हैं। उनकी केवल शारीरिक विशेषताओं जैसे कद, रंग, वजन, देखने व सुनने की क्षमता आदि में ही अंतर नहीं होता बल्कि उनकी मनोवैज्ञानिक क्षमताओं में भी अंतर होता है। अपने रोजमर्रा के जीवन में हम देखते हैं कि लोगों की सोच, अभिप्रेरणा, समस्याओं के प्रति नजरिया, रुचि और सीखने की क्षमता एक दूसरे से अलग होती है। इस प्रकार की वैयक्तिक भिन्नताओं का अध्ययन करना मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से बुद्धि, व्यक्तित्व, रुचि, रचनात्मकता और अन्य पहलुओं की जाँच करना प्रस्थापित अभ्यास बन गया है। नौकरियों के लिए उम्मीदवारों का चयन करते समय, मानसिक विक्लांगता का निदान करने और मनोवैज्ञानिक विकास के आकलन आदि ने विभिन्न आयु वर्गों (जैसे बच्चे, प्रौढ़, शिक्षित, अनपढ़) के लिए विभिन्न परीक्षणों के निर्माण के लिए प्रेरित किया है। बुद्धि लब्धि ('आई. क्यू.') शब्द अब एक प्रचलित शब्द बन गया है और अक्सर लोग अपने आई. क्यू. तथा व्यक्तित्व के विषय में जानना चाहते हैं। इस पाठ के माध्यम से आपको मनोवैज्ञानिक मापन के मूलभूत लक्षणों के विषय में जानने तथा बौद्धिक क्षमता के मापन और प्रकति को समझने में सहायता मिलेगी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के बाद, आप :

- मनोवैज्ञानिक मापन का अर्थ समझ सकेंगे;
- मापन के लिए प्रयोग होने वाले मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के मूलभूत लक्षणों का विवरण दे सकेंगे;

- बुद्धि सम्बन्धी संप्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे;
- बुद्धि सम्बन्धी परीक्षणों की चर्चा कर सकंगे और
- मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विभिन्न उपयोगों की जानकारी दे सकेंगे।

15.1 मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन की प्रकति

मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन से अभिप्राय उन विशिष्ट प्रविधियों से है जिनके द्वारा किसी व्यक्ति की निजी विशेषताओं, व्यवहार और क्षमताओं का पता लगाया जाता है। इन प्रविधियों के माध्यम से व्यक्ति के विषय में स्पष्ट विवरण दिया जाता है कि वह किस प्रकार अन्य व्यक्तियों से भिन्न या उनके समान हैं। इस प्रकार के मूल्यांकन हम अक्सर करते हैं, जब भी हम किसी के विषय में यह धारणा बनाते हैं कि वह, 'अच्छा', 'शालीन', 'बुरा', 'आकर्षक', 'भद्दा', 'बुद्धिमान' या 'मूर्ख' है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की धाराणाएं अक्सर भ्रमात्मक होती हैं। विज्ञान सम्मत मनोविज्ञान के द्वारा इन प्रविधियों को क्रमिक बनाया जाता है ताकि इन मूल्यांकनों में कम से कम गलती हो। मनोवैज्ञानिक इन प्रविधियों को अक्सर 'परीक्षण' कहते हैं। मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक संरचित तकनीक है जिसके द्वारा सावधानी चुना गया व्यवहार संबंधी प्रतिदर्श प्राप्त किया जाता है।

जिस व्यक्ति का परीक्षण किया जा रहा है उसके विषय में सही अनुमान लगाया जा सके, इसके लिए आवश्यक है कि ये परीक्षण, विश्वसनीय, वैध और मानकीकत हों। आइए अब इन शब्दों का अर्थ समझें। कोई भी परीक्षण तभी विश्वसनीय होता है जब वह स्थिरतापूर्वक मापन करे। उदाहरण के लिए यदि आप किसी चीज का अलग–अलग अवसरों पर मूल्यांकन कर रहे हैं तो प्राप्त अंक समान होने चाहिए। यदि कोई मापक, एक ही वस्तु की दो बार जांच करने पर अलग–अलग परिणाम दे तो उसे अविश्वसनीय कहा जाएगा। बुद्धि परीक्षण का कोई भी परीक्षण तभी विश्वसनीय कहा जाएगा यदि वह एक ही व्यक्ति को बार बार मूल्यांकित करने पर समान परीणाम प्रस्तुत करे।

किसी परीक्षण की वैधता से अभिप्राय उस स्तर से है जिस स्तर तक यह संबंधित वस्तु को माप सकता है। व्यक्तित्व संबंधी कोई भी वैध परीक्षण व्यक्ति के व्यक्तित्व की जांच करता है और व्यक्तित्व के वे आयाम जिन परिस्थितियों में महत्वपूर्ण होते हैं उन परिस्थितियों में अमुक व्यक्तित्व के व्यवहार की भविष्यवाणियां भी करता है।

कोई भी मूल्यांकन उपकरण तभी उपयोगी सिद्ध होता है जब वह मानकीकत हो। मानकीकरण से अर्थ है कि समान परिस्थितियों में वह परीक्षण सभी व्यक्तियों पर एक ही ढंग से लागू किया जाए। इसके अन्तर्गत कुछ सिद्धान्त भी स्थापित किए जाते हैं ताकि व्यक्ति द्वारा अर्जित अंकों को अर्थ प्रदान किए जा सकें। सिद्धान्तों के तहत एक व्यक्ति द्वारा अर्जित अंकों को उसी श्रेणी के अन्य व्यक्तियों के अंकों से तुलना की जाती है। मानकीकरण द्वारा प्रक्रिया के उद्देश्यों और प्रक्रिया लागू करने की परिस्थितियों में

एकरूपता सुनिश्चित की जाती है। इस प्रकार परीक्षण के परिणामों की व्याख्या करना संभव हो पाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न मानवीय लक्षणों की जांच करने के लिए विभिन्न परीक्षण विकसित किए हैं। स्कूलों में हम वर्ष के अंत में परीक्षण का प्रयोग करते हैं ताकि जान सकें कि विद्यार्थियों ने कितना ज्ञान अर्जित किया। मनोवैज्ञानिक अक्सर क्षमता और व्यक्तित्व के परीक्षणों का प्रयोग करते हैं। योग्यता संबंधी परीक्षण से पता चलता है कि कोई व्यक्ति अपनी सर्वोत्तम परिस्थितियों में क्या कर सकता है। इन परीक्षणों में व्यक्ति की क्षमता की जांच उपलब्धि की अपेक्षा संभावना के रूप में की जाती है। बुद्धि परीक्षण और अभिक्षमता परीक्षण इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। अभिक्षमता से अर्थ है कि व्यक्ति विशिष्ट परिस्थिति में आवश्यक विशिष्ट प्रकार के कौशल को सीखने की कितनी योग्यता रखता है। आई आई टी या पी एम टी की प्रवेश परीक्षाएं अभिक्षमता परीक्षण ही हैं। व्यक्तित्व परीक्षणों द्वारा सोच विचार, भावनाओं और व्यवहार के विशिष्ट लक्षणों की परख होती है।

15.2 बुद्धि का संप्रत्यय

ऐसी बहुत कम बातें हैं जो बुद्धि की भांति ही बहुत स्पष्ट एवं भ्रामक हैं। बौद्धिक उपलब्धियों का अंतर कार्य निष्पादन के द्वारा स्पष्ट नजर आता है। उदाहरण के लिए यदि हम दसवीं कक्षा के छात्रों की स्कूल परीक्षाओं के अंकों को देखें तो यह साफ नजर आता है कि अधिकांश छात्र औसत प्रदर्शन करते हैं और बहुत ही कम छात्र नितान्त भिन्न प्रदर्शन करते हैं या तो बेहद उच्च या बेहद निम्न। यही तथ्य बुद्धि के संप्रत्यय पर भी लागू होता है। आकति 15.1 के द्वारा यह वितरण दर्शाया गया है। हम देख सकते हैं कि बुद्धि सूचकांक के रूप में प्रयुक्त बुद्धि लब्धि (आई क्यू) का स्तर भिन्न भिन्न है और बहुत ही कम वयक्तियों का बौद्धिक स्तर नितांन्त भिन्न है। इसी प्रकार, बहुत कम लोग अति विद्वान और अति मंद बुद्धि श्रेणियों में आते हैं।

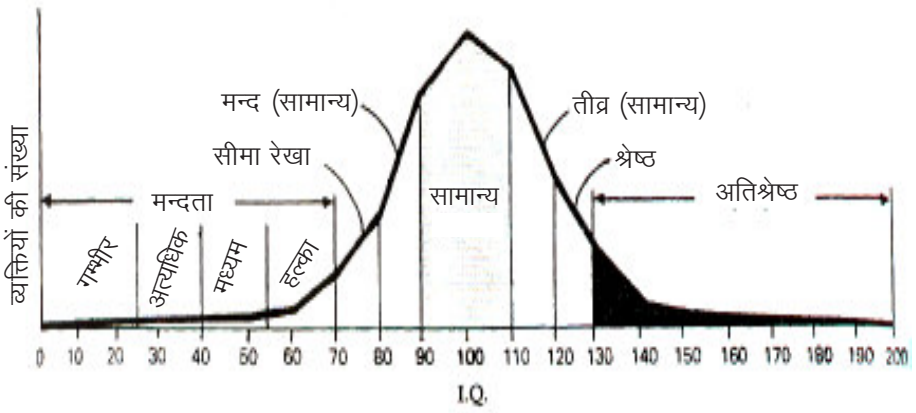

आकति 15.1:

हालांकि, जब हम बुद्धि की परिभाषा देने और उसे मापने का प्रयास करते हैं तो यह एक टेढ़ी खीर सिद्ध होता है। बुद्धि एक अमूर्त संप्रत्यय है। इसी कारण बुद्धि को मापने के लिए हम अपने ही सैद्धान्तिक दष्टिकोण की मदद लेते हैं। अपने सैद्धान्तिक या संप्रत्ययात्मक प्रतिरूपों के बिना हम इस तक नहीं पहुंच सकते। आजकल मनोवैज्ञानिकों के पास ऐसे अनेक प्रतिदर्श उपलब्ध हैं जो बुद्धि संबंधी विभिन्न विचार प्रस्तुत करते हैं। बुद्धि को इतने भिन्न भिन्न तरीकों से परिभाषित किया गया है कि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इसे ''बुद्धि परीक्षणों द्वारा क्या मापा जाता है?'' के रूप में ही परिभाषित किया है। यह जटिलता इस कारण भी है क्योंकि अनेक बुद्धि परीक्षणों का विकास बुद्धि को परिभाषित करने से पूर्व ही कर लिया गया। इस संबंध में सर्वप्रथम प्रकाशित बुद्धि परीक्षण की कहानी याद करना उचित रहेगा। वर्ष 1905 में बिने और साइमन से फ्रांस के लोक शिक्षण मंत्री ने कहा कि वे मानसिक रूप से विकलांग बच्चों को पढ़ाने में मदद करें। इन मनोवैज्ञानिकों ने यह आवश्यक समझा कि इन मानसिक विकलांग बच्चों की बुद्धि परीक्षा ली जाए। उन्होंने इन बच्चों की परीक्षा ली और उनके अंकों की तुलना, समान आयु के सामान्य बच्चों से की। जो बच्चे अपनी उम्र के सामान्य बच्चों से मानसिक रूप से दो वर्ष पीछे थे उन्हें मन्द बुद्धि माना गया। बिने के बुद्धि संबंधी प्रथम परीक्षण के प्रकाशन के बाद से दुनिया भर में बुद्धि संबंधी असंख्य अनुसंधान हुए हैं। जिसके कारण अनेक सैद्धान्तिक विचारधाराएं सामने आईं। इससे पहले कि हम ऐसी ही कुछ विचारधाराओं की चर्चा करें, यह जान लेना उचित होगा कि अधिकांश अनुसंधानों में बुद्धि को मोटे तौर पर निम्नलिखित योग्यताओं से जोड़ कर देखा गयाः

(क) नई परिस्थितियों और बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप खुद को ढालना।

(ख) अनुभवों या परीक्षणों से सीखना या लाभ उठाना और

(ग) चिह्नों और संप्रत्ययों के प्रयोग द्वारा अमूर्त रूप से सोचना।

यहां यह स्पष्ट करना होगा कि 'योग्यता' शब्द से अभिप्राय किसी कार्य को करने की वर्तमान उपलब्ध शक्ति से है। बुद्धि संबंधी विभिन्न विचारधाराओं को दो मुख्य श्रेणियों मनोमितीय या कारक सिद्धान्तों और प्रक्रिया आधारित विचारों में बांटा जा सकता है। कारक सिद्धान्तों में बुद्धि का निर्माण करने वाले कारक (एस) की पहचान की जाती है और प्रक्रिया सिद्धान्त, बुद्धि को ऐसे विशिष्ट कार्यों, प्रक्रियाओं या बौद्धिक प्रकार्यों संबंधी संक्रियाओं के प्रकाश में परिभाषित करते हैं जिनके लिए लौकिक क्षमताएं आवश्यक हैं। आइए बुद्धि संबंधी कुछ प्रमुख दष्टिकोणों की चर्चा करें।

15.3 बुद्धि का कारक दष्टिकोण

बुद्धि का संघटन चाहे वह एकात्मक हो या बहु अवयवीय, सदैव ही उत्सुकता का विषय रहा है। अन्तर्सम्बंधी तकनीक जिसे कारक विश्लेषण कहते हैं, के प्रयोग के माध्यम से अनेक अनुसंधानों ने बुद्धि की रचना को समझने का प्रयास किया है।

सामान्य (जी) कारक के रूप में बुद्धि

स्पीयरमैन ने यह प्रस्ताव रखा कि हमारे पास एक सामान्य बुद्धि कारक (g) होता है और अनेक विशिष्ट कारक (S) होते हैं जिनका संबंध विशिष्ट योग्यताओं से होता है। यह (जी) कारक सभी प्रकार की क्षमताओं में काम आता है। अमूर्त संबंधों को समझने की योग्यता के रूप में यह प्रकट होता है। यह विचार आकति 15.2 में दर्शाया गया है।

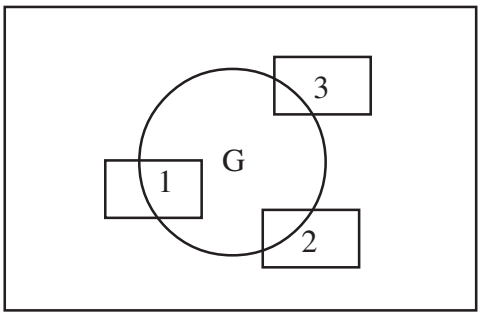

चित्र 15.2:

बुद्धि की कारकीय दष्टि

थर्सटोन का प्रस्ताव था कि बुद्धि सात तत्वों से मिलकर बनती है जो है, मौखिक बोधन, शब्दों का पठन प्रवाह, संख्या, स्थान, सहचर्य स्मति, प्रत्यक्ष गति और प्रवर्तन (या सामान्य तर्कशक्ति)। उसने इन तत्वों की जांच के लिए प्राथमिक मानसिक योग्यताओं (पी. एम. ए.) का एक परीक्षण विकसित किया।

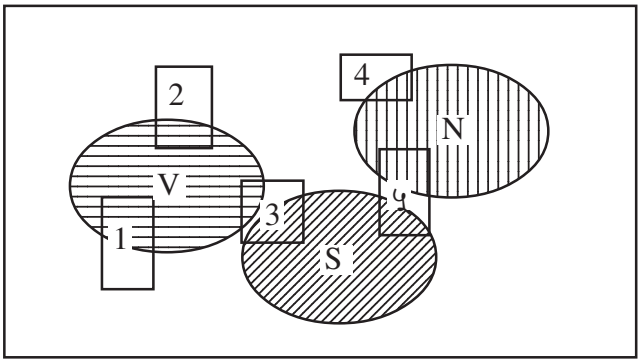

चित्र 15.3:

15.4 बुद्धि की संरचना/बनावट

बुद्धि का एक समन्वित रूप प्रस्तुत करने के उद्देश्य से गिलफोर्ड ने एक अन्य विचार प्रस्तुत किया। उसने इसे बुद्धि की संरचना (SI) प्रतिरूप नाम दिया। इस प्रतिरूप में बुद्धि के प्रमुख लक्षणों को तीन मुख्य आयामों में विभाजित किया जाता है।

संक्रियायें: व्यक्ति क्या करता है? संक्रिया में संज्ञान, स्मति अंकन, स्मति धारणा, विभिन्न उत्पादन (रचनात्मकता), एक अभिसारी उत्पादन और मूल्यांकन शामिल हैं।

अन्तर्वस्तु: इससे अभिप्राय, जिस समाग्री या सूचना के आधार पर कार्य निष्पादित किया जाता है, उसकी प्रकति से है। इसमें दश्य, श्रव्य, प्रतीकात्मक (जैसे शब्द, अंक) अर्थ विषयक (जैसेः शब्द) और व्यवहारात्मक (व्यक्ति के व्यवहार, अवधारणा, आवश्यकताएं आदि के विषय में सूचना) सामग्री या सूचनाएं शामिल हैं।

उत्पादः इससे अभिप्राय है कि व्यक्ति सूचना का प्रयोग किस रूप में करता है। उत्पादों को इकाइयों, वर्गों, संबंधों, रूपान्तरणों और आशयों में विभाजित किया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि कारकीय विचारधारा बुद्धि के विचार को लक्षण संगठन के रूप में प्रस्तुत करती है। अतः इस प्रकार चिन्हित लक्षणों की विभिन्नता भ्रामक मानी गई है। यहां पाठक यह याद रखें कि कारक विश्लेषण की तकनीक के माध्यम से चिन्हित लक्षण, व्यवहारात्मक पैमानों के मध्य संबंधों के स्तर को ही प्रकट करते हैं।

ये वर्णनात्मक श्रेणियां हैं। लक्षण संगठन, कार्य निष्पादित करने वाले व्यक्तियों के अनुभव की पष्ठभूमि से प्रभावित होता है। विभिन्न वर्गों, सामाजिक–आर्थिक स्तरों और लक्षण संगठन में विद्यालयी पाठयक्रम के प्रकारों में पाए जाने वाले अंतर इस विचार को समर्थित करते हैं। कारक विश्लेषण पर आधारित अतिप्रचुर अनुसंधानों को देखते हुए अनास्तासी ने निष्कर्ष रूप में सही कहा है कि ''यह संज्ञानात्मक कौशलों और अपेक्षित व पोषित ज्ञान का सम्मिलित रूप है जिसे व्यक्ति की निजी कार्यप्रणाली के अनुभवात्मक परिदश्य का संबल प्राप्त होता है।''

15.5 एक प्रक्रिया के रूप में बुद्धि

यह विचारधारा संज्ञान विज्ञान परम्परा से सम्बन्धित है। विशेषतः सूचना प्रयोग प्रक्रिया प्रतिदर्श इसके काफी नजदीक है। इसके अन्तर्गत बौद्धिक गतिविधियां सम्पन्न करने के लिए सूचनाओं के एकत्रीकरण, प्रतिनिधित्व और उपयोग की प्रक्रियाओं की पहचान की जाती है। आईए, कुछ ऐसे प्रतिदर्शों की चर्चा करें जो बुद्धि सम्बन्धी प्रक्रिया विचार पर बल देते हैं।

ट्री आर्किक सिद्धान्त

कारकीय या मनोभितीय को नकारने के पश्चात **रॉबर्ट स्टेनबर्ग** ने बुद्धि का विश्लेषण तीन आयामों घटकीय, अनुभवात्मक और प्रकरणात्मक, के आधार पर किया। घटकीय आयाम में वे प्रक्रियाएं शामिल होती हैं जिनका प्रयोग परीक्षण देने वाला व्यक्ति मानक बुद्धि परीक्षणों के प्रश्नों का उत्तर देने में करता है। इसके मूल तत्वों में इतर घटक या उच्चतर श्रेणी की नियंत्रण प्रक्रियाएं, निष्पादन घटक, अर्जन घटक और स्थानान्तरण

घटक सम्मिलित हैं। अनुभवात्मक नामक दूसरे आयाम में यह देखा जाता है कि व्यक्ति के अपने मनोजगत और बाहरी संसार के मध्य आपस में कैसा संबंध है। यह बुद्धि के प्रत्यय के साथ रचनात्मकता को जोड़ देता है। वस्तुतः व्यक्ति की बुद्धि ही उसके अनुभवों को आकार प्रदान करती है। साथ ही, यह भी देखा जाता है कि किन अनुभवों ने व्यक्ति की बुद्धि को प्रभावित किया है। बुद्धि का तीसरा आयाम है प्रकरणात्मक। इसके अन्तर्गत देखा जाता है कि व्यक्ति अपने आस–पास के वातावरण को क्या रूप प्रदान करता है, उसे स्वीकार करता है और उपलब्ध संसाधनों से अधिकतम लाभ पाने का प्रयत्न करता है। इसे व्यवहारिक बुद्धि भी कहा जाता है।

बहुपक्षीय बुद्धि सिद्धान्त

हावर्ड गार्डनर ने विचार रखा कि बुद्धि के बहुपक्षीय रूप उपलब्ध होते हैं। उसने कहा कि बुद्धि केवल एकरूप नहीं है अपितु अनेक प्रकार की बुद्धियों का अस्तित्व है और प्रत्येक एक दूसरे से भिन्न है। उसने बुद्धि के आठ रूपों की पहचान की: भाषा–विज्ञानी, तर्क सम्मत, गणित सम्मत, स्थान संबंधी, संगीत संबंधी, दैहिक गतिसंवेदी अंतरवैयक्तिक, आन्तरक और प्राकतिक।

व्यक्ति जिस संस्कति में रहता है उसके साथ सम्मति के अनुरूप ही इन प्रकारों की महत्ता निर्धारित होती है। अलग–अलग संस्कतियों में बुद्धि के प्रत्येक प्रकार की अलग अलग महत्ता होती है।

पाठगत प्रश्न 15.1

सही उत्तर चुनो:

1. व्यक्तियों के बड़े समूह पर किए गए बुद्धि परीक्षण के अंक व्यक्तियों का ऐसा वर्गीकरण दर्शाएंगे जिसमें अधिकांश ने प्राप्त किए होंगे।

   (क) कम अंक

   (ख) औसत अंक

   (ग) उच्च अंक

   (घ) अत्यधिक उच्च अंक

2. बुद्धि का पहला परीक्षण संबंधित है:

   (क) बीनेट

   (ख) स्पीयरमैन

   (ग) टर्मेन

   (घ) रैवेन

3. किसने कहा था कि बुद्धि का निर्माण अनेक कारकों से होता है?

   (क) थर्स्टोन

   (ख) गिलफोर्ड

   (ग) वर्नन

   (घ) स्टर्नबर्ग

4. वह विचारधारा जिसमें बुद्धि का संप्रत्यय संक्रिया, अन्तर्वस्तु और उत्पाद के रूप में की गई है:

   (क) व्यवस्था प्रतिदर्श

   (ख) बुद्धि की संरचना

   (ग) श्रेणिक प्रतिदर्श

   (घ) जी कारक प्रतिदर्श

15.6 गैर संज्ञानात्मक क्षेत्रों में बुद्धि

अभी तक किए गए विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि बुद्धि संबंधी अनुसंधानों का प्रमुख केन्द्र तर्क और संज्ञान क्षेत्र ही रहे हैं। हाल ही के कुछ वर्षों में अन्य पहलुओं पर भी गौर किया गया है। उनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण करना रोचक होगा। ऐसा ही एक विचार है– विवेक। यह संज्ञान, अन्तरवैयक्तिक, सामाजिक और व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं का अनोखा मेल है। निराशा और अखंडता के मध्य परस्पर विरोधों के साथ सफल संतुलन बनाने के परिणामस्वरूप विवेक प्राप्त होता है या स्वयं की क्षमताओं से आगे बढ़ने पर विवेक उत्पन्न होता है। ज्ञान के द्वारा संवेगात्मक और संज्ञानात्मक तत्वों का सफल एकीकरण किया जाता है। अन्य संबंधित विचार है ''व्यवहारिक बुद्धि'' की दूरदर्शिता। यह निजी लक्ष्यों, योजनाओं और उद्देश्यों की व्यवहारिक उपलब्धि पर यह विचार जोर देता है।

सामाजिक बुद्धि ने भी अनुसंधाकर्ताओं का ध्यान आकर्षित किया। इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले कार्यों, और दैनिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए व्यक्ति जो प्रयास करता है, यह विचार उन्हीं का प्रतिनिधित्व करता है। अंततः सबसे नया विचार है संवेगात्मक बुद्धि। स्वयं और दूसरों की भावनाओं को समझने, उनके मध्य अंतर को पहचानने और इस सूचना का प्रयोग अपनी विचारधारा व कार्यप्रणाली निर्धारित करने की योग्यताओं के रूप में संवेगात्मक बुद्धि को परिभाषित किया गया है। जिन लोगों की संवेगात्मक बुद्धि का स्तर उच्च होता है वे स्वयं के प्रति अधिक संवेगात्मक जागरूक होते हैं, संवेगों को भली–भांति संभालते हैं, संवेगों का उचित प्रयोग करते हैं,

संबंधों का अच्छी तरह निर्वाह करते हैं और सहानुभूमि सम्पन्न करते हैं। यह देखा गया है कि नौकरियों और जीवन के अन्य क्षेत्रों में सफलता बुद्धिलब्धि की अपेक्षा संवेगात्मक बुद्धि पर अधिक निर्भर करती है। किसी भी व्यक्ति की संवेगात्मक बुद्धि उसके जन्म से ही सुनिश्चित नहीं होती, बचपन इसके विकास का सबसे महत्वपूर्ण समय होता है। युवावस्था के दौरान इसे और विकसित किया जा सकता है।

15.7 बुद्धि परीक्षण

आइए कुछ बुद्धि परीक्षणों को समझने का प्रयास करें। इन परीक्षणों को मौखिक और अमौखिक (निष्पादन) तथा व्यक्तिगत और सामूहिक परीक्षणों में वर्गीकत किया जा सकता है। निरक्षर अथवा विकलांग व्यक्तियों की क्षमता जांचने के लिए निष्पादन परीक्षण किए जाते हैं। एक समय में एक ही व्यक्ति पर किए जाने वाला परीक्षण व्यक्तिगत परीक्षण होता है और एक साथ अनेक व्यक्तियों पर सम्पन्न होने वाला परीक्षण सामूहिक परीक्षण कहलाता है। कुछ महत्वपूर्ण बुद्धि परीक्षणों के विषय में चर्चा आगे की गई है।

1. स्टेनफोर्ड - बीने बुद्धि मापक

फ्रैंच विद्यालयों में छात्रों के लिए जो परीक्षण बीने और साइमन ने विकसित किया उसे टर्मेन तथा स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के उनके सहयोगियों ने संशाधित किया और वर्ष १९१६ में यह प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् यह व्यक्तिगत परीक्षण कई बार संशोधित किया जा चुका है। आज हमारे पास स्टेनफोर्ड–बीने (L-B IV) मापक का चौथा अंक उपलब्ध है। इसमें चार प्रमुख संज्ञान क्षेत्रों: मौखिक तार्किकता, अमूर्त/दश्य तार्किकता, परिमाण संबंधी तर्क और अल्पकालिक स्मति का प्रतिनिधित्व करने वाले 15 परीक्षण संकलित हैं। ये परीक्षण मिश्रित क्रम में संकलित हैं। इसके अन्तर्गत 2 वर्ष की आयु से 18 वर्ष की आयु तक के लोगों को लक्षित किया गया है। इसे दो चरणों में लागू किया जाता है। पहले चरण में प्रश्नकर्ता शब्द कोष संबंधी परीक्षण करता है जिसकी वजह से बचे हुए परीक्षणों के लिए प्रारम्भिक स्तर तय करने में सहायता मिलती है।

दूसरे चरण में, प्रश्नकर्ता प्रत्येक परीक्षण में वास्तविक प्रदर्शन के संबंध में आधार स्तर और उच्च स्तर स्थापित करता है। दो क्रमिक स्तरों पर चार प्रश्नों को पास करने पर आधार स्तर प्राप्त होता है। यदि यह प्रारंभिक स्तर पर प्राप्त नहीं होता तो लगातार निम्नतम क्रम में परीक्षण किया जाता है जब तक आधार स्तर प्राप्त नहीं हो जाता। उच्चतम स्तर तब प्राप्त होता है जब दो क्रमिक स्तरों पर चार में से तीन या चारों ही प्रश्न असफल हो जाते हैं। इस स्तर पर पहुंच कर व्यक्ति का वह विशिष्ट परीक्षण रोक दिया जाता है।

इस परीक्षण के पहले संस्करण में अंकों की बुद्धि लब्धि (आई क्यू) के रूप में व्याख्या करने के लिए निम्नलिखित फार्मूला प्रयुक्त होता था:–

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{क्रमिक आयु}} \times 100$$

यहां एम ए से अभिप्राय मानसिक आयु और सीए से अभिप्राय क्रमिक आयु है। बुद्धि सूचकांक के रूप में आई क्यू का विचार बहुत चर्चित रहा। किन्तु पिछले कुछ वर्षों में इसकी आलोचना भी की गई। अब बुद्धि के अन्य सूचकांकों को विकसित करने और प्रयोग करने का प्रयास किया जा रहा है।

टेस्ट के नए संस्करण में सभी 15 परीक्षणों के लिए मानक आयु अंक (एस ए एस) दिए गए हैं। टेस्ट की रिकॉर्ड बुकलेट में एक चार्ट दिया गया है जिसमें दिए गए प्रत्येक टेस्ट के दौरान व्यक्ति के एस ए एस प्रदर्शन का ब्यौरा लिखा जाता है। आई क्यू शब्द के प्रयोग पर अब पूरी तरह रोक है। इस टेस्ट के द्वारा निरीक्षक विभिन्न परीक्षण उद्देश्यों के लिए उपयोगी अलग अलग योग्यताओं की जांच कर सकता है।

2. वेस्लर मापक (स्केल)

इन मापकों को मूल रूप से डेविड वेस्लर ने विकसित किया था। ये मापक वयस्कों, स्कूली बच्चों और उनसे भी छोटे बच्चों के समूहों से संबंधित है। इनका प्रयोग सामान्य बुद्धि के मापकों के रूप में तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं में संभव सहायकों के रूप में होता है। टेस्ट के वर्तमान संस्करण में वेस्लर एडल्ट इंटेलीजैंस स्केल–रीवाइजड शामिल है जो 16 से 74 वर्ष की आयु वर्ग पर लागू होता है। वेस्लर इंटेलीजैंस स्केल फोर चिल्ड्रन– ततीय संस्करण 6 वर्ष से 16 वर्ष व 11 माह के बच्चों के लिए बना है तथा वेस्लर प्री स्कूल एण्ड प्राइमरी स्कूल ऑफ इंटलीजैंस – रीवाइज़ड तीन माह तक के बच्चों पर लागू होता है। ये सभी वर्तमान संस्कण में शामिल हैं। विभिन्न प्रकार के 17 उप परीक्षणों में से 8 सभी तीन स्केलों में समान है (5 मौखिक और 3 प्रदर्शन उप परीक्षण)। सूचना उप परीक्षण है जो सभी तीन स्केलों में लागू होता है। इन स्केलों के निष्पादन उप परीक्षणों में विशेष रूप से विभिन्न वस्तुओं संबंधी कुशलता की आवश्यकता होती है जैसे पहेलियां और ब्लॉक्स अथवा छपी हुई सामग्री की विजुअल स्केनिंग जैसे प्रतीक। कुछ अनुसंधान कर्ताओं ने इन स्केलों के लघु रूप प्रस्तुत किए हैं। प्रत्येक उप परीक्षण के अंकों को 10 के मान और 3 के एस डी के माध्यम से मानक अंकों में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस प्रकार सभी उप परीक्षण अंकों को तुलनीय इकाइयों में अभिव्यक्त किया जाता है। परीक्षार्थी के निष्पादन का मूल्यांकन उपयुक्त आयु नियमों के अनुरूप किया जाता है।

3. रावेन का प्रोगेसिव मैट्रिक्स (आर पी एम)

यह निष्पादन परीक्षण 'जी कारक' या सामान्य बुद्धि को मापने के लिए बनाया गया है। परीक्षण में मैट्रिक्स के सेट या पंक्तियों और कॉलमों में डिजाइन की बनावट होती है,

जिसमें प्रत्येक में से एक भाग निकाल दिया गया होता है। परीक्षार्थी को दिए गए विकल्पों में से निकाले गए भाग के रूप में सही विकल्प का चुनाव करना होता है।

आसान प्रश्नों में बारीकी से अन्तर पहचानने की आवश्यकता होती है। कठिन प्रश्नों में सदश्यता, पैट्रन के क्रम संचयों और अदला बदली तथा अन्य तार्किक संबंधों का प्रयोग होता है। कठिनता के स्तर में भिन्नता के आधार पर यह तीन रूपों में उपलब्ध है:–

(i) स्टैन्डर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स (एस पी एम) 6 वर्ष से 80 वर्ष तक के व्यक्तियों के लिए उपयोगी है।

(ii) कलर्ड प्रोग्रसिव मैट्रिक्स (सी पी एम) छोटे बच्चों और विशिष्ट समूहों के लिए है।

(iii) एडवांस प्रोग्रसिव मैट्रिक्स (ए पी एम) किशारों और युवाओं के लिए है।

4. ड्रा-ए-मैन टेस्ट

गुड इनफ द्वारा विकसित इस अमौखिक टेस्ट में व्यक्ति को एक पुरुष का चित्र बनाना होता है। व्यक्तिगत शारीरिक अंगों, कपड़ों, अनुपात, तथा अन्य ऐसे लक्षणों को शामिल करने के लिए प्रशंसा की गई है इस टेस्ट के प्रति औसत विश्वसनीयता और मान्यता दर्शाई गई है। भारत में प्रमिला पाटक ने इस टेस्ट के नियम विकसित किए।

15.8 बुद्धि परीक्षणों का उपयोग

क्योंकि इन परीक्षणों का उपयोग नौकरी, प्रमोशन, स्कूल या कालेज में प्रवेश आदि महत्वपूर्ण निर्णय लेने में किया जाता है इसलिए इनसे जुड़ी अनेक नैतिक व प्रक्रियागत समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। अतः इन परीक्षणों पर नियंत्रण रखना आवश्यक होता है। यह सुझाव दिया जाता है कि केवल प्रशिक्षित व्यक्ति ही इन परीक्षणों का आयोजन करें। साथ ही, अंकों का भी प्रयोग ठीक तरह से हो। टेस्ट के प्रश्न आम न हों, ऐसे प्रयास किए जायं। अन्यथा टेस्ट के परिणाम मान्य नहीं रहेंगे। प्रक्रिया में समानता बनाए रखने के लिए प्रश्नकर्ताओं को पहले से ही तैयारी करनी होती है। टेस्ट लेने के दौरान परिस्थितियां भी अनुकूल हों। प्रश्नकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह परीक्षणाधीन व्यक्ति की टेस्ट में रुचि जागत करे, उन्हें सहयोग देने के लिए प्रेरित करे और उनसे उचित ढंग से प्रतिक्रियाएं प्राप्त करने का प्रयास करे।

फिलहाल, बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग अनेक रूपों में किया जा रहा है जिसका लाभ अनेक गतिविधियों में मिलता है जैसे विभिन्न नौकरियों के लिए लोगों का चयन, मानसिक विकलांगता का पता लगाना, मार्गदर्शन और कांउसंलिग तथा बौद्धिक विकास के क्षेत्र में अनुसंधान। इन सभी प्रकार के उपयोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

व्यक्तियों का चयन

यह एक सामान्य तथ्य है कि व्यक्तियों की कुशलता, क्षमता और रुचियों में अंतर होता है। नौकरी में सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि व्यक्ति किस नौकरी के लिए आवेदन कर रहा है उसमें उस विशिष्ट कार्य की निर्वाह की क्षमता है या नहीं। इस प्रकार चयन प्रक्रिया के दौरान आवेदन के गुणों और कार्य संबंधी आवश्यकताओं में मिलान किया जाता है। बुद्धि को सभी प्रकार के कार्यों में सफलता का आधार माना जाता है। इसी कारण व्यक्तियों के चयन प्रक्रियाओं में बुद्धि परीक्षण एक प्रमुख आधार होता है। बुद्धि परीक्षणों की सहायता से आवेदक की बुद्धि का स्तर मापा जाता है और संबंधित परिणामों का प्रयोग नौकरी प्रदाता आवेदक के संबंध में निर्णय लेते समय करता है।

मानसिक विकलांगता चिह्नित करना

व्यक्तियों की बौद्धिक क्षमताओं में अंतर होता है, जिन व्यक्तियों का बौद्धिक स्तर बहुत निम्न होता है उन्हें मानसिक रूप से विकलांग माना जाता है। ऐसे लोगों को बाहरी दुनिया की चुनौतियों के साथ तालमेल बनाने में बहुत कठिनाई होती है। उन्हें विशिष्ट देखभाल और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। वस्तुतः ऐसे अनेक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति भी नहीं कर पाते और उन्हें स्वयं की देखभाल में भी कठिनाई होती है। अन्य अनेक सूचकांकों सहित बद्धि परीक्षण की सहायता से मानसिक विकलांगता का स्तर मापा जाता है।

मार्गदर्शन और काउंसलिंग

शिक्षा के संबंध में व्यावसायिक मार्गदर्शक का पेशा अब अहम होता जा रहा है। हमारे देश का शैक्षिक स्वरूप जिस प्रकार विस्तत और भिन्नतापूर्ण होता जा रहा है, छात्रों के लिए विषय और व्यवसाय का चयन करना कठिन हो गया है। अध्यापकों ओर अभिभावकों को भी इसमें कठिनाई अनुभव होती है। इस संबंध में, मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों की योग्यताओं का पता लगाने के लिए बुद्धि परीक्षणों का सहारा लेते हैं तथा उनसे प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग व्यवसाय चुनाव में करते हैं।

15.9 मानवीय बुद्धि में भिन्नताओं की व्याख्या

हालांकि बुद्धि में अंतर होना स्वाभाविक है किन्तु इस अंतर के कारणों पर आज भी बहस जारी है। अनुसंधाकर्ताओं ने विशेष रूप से आनुवंशिक या वंशानुगत और पर्यावरणीय कारकों का आई क्यू की भिन्नता में योगदान का पता लगाने का प्रयास किया है। अध ययनों से पता चलता है कि निकट संबंधी व्यक्तियों के अंक लगभग समान होते हैं। खासतौर पर, गोद लिए गए बच्चों और ऐसे जुड़वा बच्चे जो शुरुआती जीवन में ही अलग हो गए तथा उनका पालन–पोषण अलग परिवारों में हुआ, उनके अध्ययन से इस प्रकार

की प्रवत्ति प्रकट होती है। पर्यावरणीय भिन्नता और समद्धताओं के अध्ययन में पर्यावरणीय कारकों के आई क्यू पर प्रभाव का पता चलता है। रोचक तथ्य यह है कि मुखीय योग्यताओं में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं अधिक अंक अर्जित करती हैं जबकि पुरुष दश्य–स्थान संबंधी क्षमताओं में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। ऐसे अंतर मानव प्रजाति के विकास का इतिहास दर्शाते हैं।

सामूहिक भिन्नताओं का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष बुद्धि परीक्षणों के सांस्कतिक पक्ष से जुड़ा है। यह अक्सर कहा जाता है कि अधिकांश टेस्ट पश्चिमी संस्कति के संबंध में विकसित किए गए हैं। परिणामस्वरूप जो बच्चे पश्चिमी संस्कति से परिचित होते हैं वे बेहतर प्रदर्शन करते हैं और अपरिचित बच्चों का दर्शन कमतर होता है। इसी कारण कल्चर फेयर टेस्ट विकसित करने के प्रयास किए गए जैसे कि कैटल्स कल्चर फेयर टेस्ट आफ इन्टेलीजेन्स।

पाठगत प्रश्न 15.2

उचित पर्याय चुनें:

1. इनमें से किसका संबंध बुद्धि के गैर संज्ञानात्मक पक्ष से नहीं है:

   (क) व्यवहारिक बुद्धि

   (ख) सामाजिक बुद्धि

   (ग) संवेगात्मक बुद्धि

   (घ) बुद्धि का प्रोसेस/प्रक्रिया प्रतिदर्श

2. बुद्धि लब्धि (आई क्यू) को किस फार्मूला से प्राप्त किया जाता है:

   (क) MA/CA + 100

   (ख) MA/CA × 100

   (ग) सीए/एम ए × 100

   (घ) सीए/एम ए + 100

3. वेस्लर टेस्ट किसे मापता है:

   (क) विशिष्ट योग्यताएं

   (ख) मौखिक योग्यता

   (ग) बुद्धि की प्रक्रिया

   (घ) सामान्य योग्यता

टिप्पणी

4. एक बुद्धि परीक्षण में इसका होना आवश्यक है:

   (क) नियम

   (ख) वैधता

   (ग) विश्वसनीयता

   (घ) उपरोक्त सभी

5. बुद्धि परीक्षण किसमें सहायता नहीं करता:

   (क) मार्ग दर्शन

   (ख) व्यक्ति चयन

   (ग) ज्ञान अर्जन का स्तर मापना

   (घ) समस्या सुलझाने की क्षमता मापना

आपने क्या सीखा

- मनोवैज्ञानिक विशिष्टताएं सामान्य रूप से व्यक्तियों में वितरित होती हैं। इसी कारण अधिकांश लोग औसत रूप से बुद्धिमान होते हैं और बहुत कम व्यक्तियों में बुद्धि का बहुत निम्न या बहुत उच्च स्तर पाया जाता है।
- वैयक्तिक भिन्नताओं का अध्ययन महतवपूर्ण है। विभिन्न सैद्धान्तिक विचारधाराओं के अनुसार बुद्धि को अनेक रूपों में देखा जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिक इसे एक लक्षण मानते हैं जबकि कुछ इसे प्रक्रिया कहते हैं।
- लक्षण मानने वाली विचारधारा के भी अनेक रूप हैं। इसी कारण हमारे पास एकरूपा (सामान्य) कारक, बहुरूपी कारक, और वंशानुगत विचार उपलब्ध हैं। सार रूप में, बुद्धि संज्ञानात्मक कौशल और ज्ञान का सम्मिलित रूप प्रतीत होती है।
- बुद्धि संबंधी प्रक्रिया विचार इसे विभिन्न संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के रूप में देखता है। साथ ही, बुद्धि को विभिन्न प्रकारों वाली भी माना गया है। सामाजिक और संवेगात्मक बुद्धि के विचार ने अनुसंधान के नए क्षेत्र खोले हैं।
- बुद्धि की जांच मनोवैज्ञानिक टेस्टों की सहायता से की जाती है। ये टेस्ट व्यवहार के नमूनों की जांच के भरोसेमंद और मान्य उपकरण हैं। बुद्धि का पहला टेस्ट बीनेट ने विकसित किया जिसे तत्पश्चात् स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी में मानक रूप प्रदान किया गया। ये टेस्ट मौखिक या कार्य निष्पादन के रूप में हो सकते हैं और इन्हें एक व्यक्ति या समूह पर लागू किया जा सकता है।

- बच्चों और विकलांग व्यक्तियों के लिए विशिष्ट टेस्ट विकसित किए गए हैं। इन परीक्षणों का प्रयोग अक्सर व्यक्तियों के चयन, मार्गदर्शन, मानसिक विकलांगता चिह्नित करना और अनुसंधान में किया जाता है।
- भरतीय मनोवैज्ञानिकों ने अनेक परीक्षणें को अपनाया है जिनका प्रयोग व्यक्ति चयन, मार्गदर्शन, मानसिक विकलांगता चिह्नित करने और अनुसंधानों में किया जाता है। हालांकि भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने अनेक परीक्षण अपनाए हैं किन्तु अभी और भी अपेक्षित हैं।
- मनोवैज्ञानिकों ने उपलब्धियों, व्यवहार और व्यक्तित्व व कौशल सीखने की योग्यताओं को मापने के लिए भी टेस्ट विकसित किए हैं।

पाठांत प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक जिन विभिन्न प्रकारों से बुद्धि के विचार को प्रकट करते हैं उनके विषय में बताओ।
2. बुद्धि को मापने में प्रयुक्त होने वाले मनोवैज्ञानिक टेस्ट की विशिष्टताएं बताएं।
3. किसी एक बुद्धि परीक्षण की व्याख्या करें तथा उसके संभावित उपयोगों की चर्चा करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

1. ख 2. क 3. क 4. ख

15.2

1. घ 2. ख 3. घ 4. घ 5. ग

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. भाग 15.3 देखें।
2. भाग 15.4 देखें।
3. भाग 15.4 और 15.5 देखें।

16

आत्म क्या है?

आत्म हमारे दैनन्दिन व्यवहार का केंद्र बिंदु है और हम सभी अपने बारे में प्रत्यक्षीकरण एवं विश्वासों का एक समुच्चय रखते हैं। यह आत्म संप्रव्यय व्यवहार के संयोजन और अभिप्रेरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह जीवन के प्रारंभ में विकसित होने लगता है। विकसित होने के साथ ही हम में आत्मसजगता का बोध आने लगता है। वास्तव में, हम सभी अनुभवों में व्यवस्त होते हैं जो हमारे आत्म बोध को बढ़ाते हैं। रोजर्स के अनुसार हम लोगों से सकारात्मक सम्मान चाहते हैं। दूसरे शब्दों में दूसरे लोगों द्वारा प्रेम और सम्मान पाने की प्रबल इच्छा होती है। आत्म का अध्ययन और इसका कार्य करना एक आकर्षित करने वाला विषय है। इस पाठ में आप जान पाएंगे कि किस प्रकार आत्म का संप्रव्यय निर्माण होता है और आत्म के विभिन्न आयाम मानव व्यवहार से संबंधित हैं।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप कर सकेंगे :

- आत्म के सम्प्रव्यय की व्याख्या;
- भारतीय दष्टि से कल्पित आत्म के विभिन्न स्तरों की व्याख्या;
- आत्म के विभिन्न पक्षों का वर्णन;
- आत्म सजगता के मूल्य को समझना; और
- आत्म का अन्य प्रक्रियाओं से संबंध का वर्णन।

16.1 आत्म का संप्रत्यय

यदि कोई पूछता है : आप कौन हैं? हम बहुधा शारीरिक आकति, विशेषक गुणों, लक्ष्यों और अभिप्रेरकों आदि का वर्णन कर देते हैं। आत्म संप्रव्यय विविध सूचनाओं का संग्रह है। यह मनोवैज्ञानिक कार्यों के केंद्रीय पक्ष को बनाता है। तथापि इसकी परिभाषा अनेक दष्टिकोणों से दी गई है। इन दष्टियों की गहन जांच से पता चलता है कि आत्म एक कर्ता के साथ–साथ वस्तु है। आत्म के अन्तर्गत व्यक्ति का चिंतन, अनुभूति और कार्य के कर्ता का रूप आता है। इस प्रकार जब मैं क्रोध का अनुभव करता हूँ या स्वतंत्रता के विचार के बारे में सोचता हूँ, वह "मैं" है आत्म कर्तारूप में। दूसरी ओर आत्म कारक के रूप में आत्म के बारे में दूसरे व्यक्ति का दष्टिकोण या "मुझे" है। हाल के वर्षों में शोधकर्ताओं ने आत्म की अभिव्यक्तियाँ या मानसिक प्रतिमानों को समझने का प्रयास किया है।

आत्म का अनुभव अति सामान्य किंतु जटिल दश्य घटना है। इसकी संरचना और विषयवस्तु समाज और संस्कति, जिसमें लोग रहते हैं, द्वारा निर्मित होती है। सांस्कतिक संदर्भ पर आधारित लोग विश्व का विभाजन "आत्म" और "अनात्म" श्रेणियों में करते हैं। व्यक्तिवादी संस्कतियों में लोग स्वतंत्र आत्म प्रत्यय को वरीयता देते हैं जबकि समूहवादी संस्कतियों में आत्मप्रत्यय के अंतनिर्भर को वरीयता देते हैं। स्वतंत्र आत्म प्रत्यय आत्म को सीमित, अलग और व्यक्तिक इकाई मानता है जो व्यक्ति की समस्त क्रियाओं के केंद्र में होता है। इसके विपरीत अंतर निर्भर आत्म प्रत्यय जुड़ाव, अंतर निर्भरता और सहभागिता पर बल देता है। इस अर्थ में आत्म और अनात्म की सीमायें कुछ अंश तक एक दूसरे को ढंक लेती हैं। फिर भी यह देखा जा सकता है कि आत्म प्रत्यय की दो विधियाँ विस्तत दष्टिकोण और किसी–किसी संस्कति में लोग दोनों प्रत्ययों को विभिन्न अंशों में प्रयोग करते हैं।

कुछ शोधकर्ता सोचते हैं कि आत्म का विचार सामाजिक अंतःक्रिया में उदित होता है। विशेष रूप से जब किसी बच्चे को कोई संबोधित करता है तब वह आत्म के बारे में सोचने लगता है। इस तरह आत्म सामाजिक अनुभव में जन्म लेता है। धीरे–धीरे लोग आत्म के विशिष्ट दष्टिकोण का आंतरीकरण कर लेता है जो व्यवहार को प्रभावित करने का एक सशक्त साधन बन जाता है। हमारे आत्म का कुछ भाग व्यक्तिगत होता है जिसके बारे में केवल हम जानते हैं। दूसरा भाग सार्वजनिक होता है जिसे दूसरे लोग जानते हैं। आत्म का एक भाग और भी है जो एक समूह की हमारी सदस्यता से आता है। इस आत्म को समूहगत आत्म या सामाजिक पहचान कहा जाता है।

16.2 आत्म के स्तर

आत्म विभिन्न स्तरों पर अनुभव किया जाता है, विलियम जेम्स, जिसने आत्म का गंभीर अध्ययन प्रारंभ किया, भौतिक आत्म, सामाजिक आत्म और आध्यात्मिक आत्म के बारे में

बताता है। नइसर पर्यावरणीय आत्म की बात करता है। आइये इन प्रकारों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करें। पर्यावरणीय आत्म उस आत्म की ओर संकेत करता है जो देश–काल में भौतिक रूप से पहचान में सम्मिलित होता है। अंतर–वैयक्तिक आत्म में वह आत्म सम्मिलित होता है जो सामाजिक संबंधों में विद्यमान रहता है जब हम दूसरे के साथ अंतःक्रिया करते हैं। व्यापक आत्म वह आत्म है जो हमारी स्मति में रहता है। यह वैयक्तिक और व्यक्तिगत है। अंत में संप्रत्यात्मक आत्म वह विचार है जो एक व्यक्ति के मन में रहता है। हम सभी विचारों का एक समूह बना लेते हैं। आत्म के वर्ग में क्या सम्मिलित किया जा सकता है। इस प्रकार संप्रत्यय करना प्रत्येक संस्कति में एक निश्चित ढंग से पोषित होता है। यह आत्म के संबंध में विचारों का एक व्यापक जाल है। इस बिंदु को स्पष्ट करने के लिए हम भारत में विकसत पंचकोश के प्रत्यय पर विचार कर सकते हैं। यहाँ पर कोश का तात्पर्य प्याज की परतों की भाँति परतों या स्तरों से है। जीव ऐसे पाँच कोशों से बना है और आत्म का विचार पदानुक्रम में संगठित बहुस्तरीय रचना के रूप में होता है। इन कोशों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :

1. **अन्नमय कोश :** इसके अंतर्गत भौतिक शरीर आता है। यह अस्तित्व की सबसे बाहरी परत है। इसे अन्नमय इसलिए कहते हैं क्योंकि यह हम जो अन्न खाते हैं उससे बनता है।

2. **प्राणमय कोश :** यह परत जीवन (प्राण) से संबंधित है और यह श्वासक्रिया तथा ऊर्जा उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया द्वारा निरूपित होता है। पांच प्रभावक भी इसी में सम्मिलित होते हैं।

3. **मनोमय कोश :** यह ज्ञानेंद्रियों से बना हुआ है। यह अहं की जगह है और यह व्यक्तिगत संलग्नता की ओर ले जाता है जो लोगों को इच्छाओं और कर्मों के बंधन में डालता है।

4. **विज्ञानमय कोश :** यह पाँच ज्ञानेंद्रियों एवं बुद्धि से बना है यह सांसारिक जीवन को व्यवस्थित करता है। इसमें विद्यमान "मैं–पन" का भाव जीव को पूर्व कर्मों से जोड़ता है। अहंकार की भावनायें भी उत्पन्न होती हैं।

5. **आनंदमय कोश :** यह आनंद की परत है। आनंद की अनुभूति का आध्यात्मिक आधार भी होता है। इच्छित वस्तु की प्राप्ति से मिला सुख भी इसी का भाग है।

पाठगत प्रश्न 16.1

उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :

1. वैयक्तिक संस्कति में लोग———————— को वरीयता देते हैं जबकि समूहगत संस्कति में वे ———————— को वरीयता देते हैं।

टिप्पणी

2. ———————— ने भौतिक आत्म, सामाजिक आत्म और आध्यात्मिक आत्म की बात कही है।

3. भारतीय विचारों में वर्णित पंचकोशीय सिद्धांत के अनुसार अन्नमय कोष में ———————— सम्मिलित होता है।

16.3 आत्म के पक्ष

आत्म के मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में शोधकर्ताओं ने आत्म के अनेक पक्ष खोज निकाले हैं। इनके अनुसार आत्म बहुमुखी है। जैसा कि आप अग्रलिखित वर्णन में पायेंगे, आत्म के बारे में हमारे विचार, इनका मूल्यांकन, इसका प्रस्तुतीकरण और इसका लोगों के बीच विभिन्न निरीक्षण और महत्वपूर्ण तरीकों से व्यवहार के रूप प्रदान करना है। वास्तव में लोगों द्वारा आत्म के बारे में रक्खे विचार व्यक्तिगत जीवन को रूप प्रदान करते हैं और संगठित करते हैं और सामूहिक जीवन में भाग लेने का अवसर देते हैं।

आत्म सम्मान

यह आत्म संप्रत्यय का मूल्यांकन करने वाला घटक है। यह मूल रूप से आंतरीकत सामाजिक निर्णयों से और वैयक्तिक गुण कितने सार्थक हैं, के विचारों से संबद्ध है। आत्म सम्मान किसी के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य में एक महत्वपूर्ण कारक है। लोग जो अपने बारे में अच्छा अनुभव करते हैं या उच्च आत्म सम्मान रखते हैं, वे उन लोगों की अपेक्षा जो निम्न आत्म सम्मान वाले होते हैं अधिक क्रियाशील, अभिप्रेरित, आग्रही और प्रसन्न होते हैं। यह देखा गया है कि अप्रसन्नता और निराशा निम्न आत्म सम्मान से संबंधित होते हैं। इस प्रकार हमारा अपने भावात्मक मूल्यांकन, सकारात्मक और नकारात्मक दोनों का उस व्यवहार के लिए जो हम भविष्य में करने जा रहे हैं, के महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। शोधों ने दर्शाया है कि निम्न आत्म सम्मान का संबंध अवसाद और आत्म संशय से है।

आत्म सामर्थय

आत्म सामर्थय हमारे उस विश्वास की ओर संकेत करती है हम जिसे प्राप्त करने योग्य हैं। दूसरे शब्दों में इसका संकेत किसी व्यक्ति की प्रत्यक्ष योग्यता की ओर है। आत्म–सामार्थ्य निश्चित करते हैं कि हम पर्यावरण और दूसरे लोगों के साथ कैसे अंतःक्रिया करते हैं। निम्न आत्म सामर्थ्य वाले बच्चों की अपेक्षा उच्च आत्म सामर्थ्य वाले बच्चे समस्याओं का शीघ्र समाधान कर लेते हैं। बन्दुरा के अनुसार आत्म सामर्थ्य विश्वास में निम्नांकित चार मुख्य प्रभावों की शक्ति होती है –

(क) **संज्ञानात्मक :** यह विचार प्रतिकतियों पर प्रभाव की ओर संकेत करता है। आत्म सामर्थ्य योग्यता के मूल्यांकन और प्रयास करने की तैयारी को प्रभावित करती है।

(ख) अभिप्रेरणात्मक : यह प्रभावित करती है कि हम कब तक प्रयास करते रहेंगे।

(ग) भावात्मक : यह तनाव, चिंता और नियंत्रण की भावना से संबंध रखती है।

(घ) चयन : इसके अंतर्गत चुनौतीपूर्ण क्रियाओं का चुनाव आता है।

आत्म प्रस्तुतीकरण

यह व्यवहारात्मक आत्म अभिव्यक्ति से संबंध रखता है। हम बहुधा उन प्रतिमाओं से संबंधित होते हैं जिन्हें हम दूसरे के सामने प्रस्तुत करते हैं। प्रसाधनों और फैशन उद्योग का बढ़ता महत्व हमारे अपने शारीरिक रूप के बारे में चिंता की सीमा को स्पष्टतः प्रदर्शित करता है। हम अक्सर अपने उन प्रभावों से संबद्ध रहते हैं जो हम सार्वजनिक क्षेत्र में प्रेषित करते हैं। तकनीकी रूप में आत्मप्रस्तुतीकरण शब्द का अर्थ वे उपाय हैं जो लोग अपने को दूसरों की सोच के अनुसार ढालने के लिए प्रयोग करते हैं। यदि जीवन एक नाटक है तो हम पटकथा से ली गई किसी पंक्ति को अभिनीत करते हैं। शोधकर्ताओं ने उस प्रक्रिया को अध्ययन करने का प्रयास किया है जिसके द्वारा हम दूसरों की सोच के अनुसार स्वयं को ढालने का प्रयास करते हैं। आत्मप्रस्तुतीकरण के अनेक रूप हो सकते हैं। यह चेतन या अचेतन, सही या गलत धारणा देने वाली और वास्तविक दर्शकों या स्वयं के लिये हो सकती है। सामान्य रूप से आत्मप्रस्तुतीकरण के लिए दो मुख्य अभिप्रेरकों की पहचान की गई है। इसमें रणनीतात्मक आत्मप्रस्तुतीकरण और आत्म–सत्यापन आते हैं। रणनीतात्मक प्रस्तुतीकरण शक्ति, प्रभाव और सहानुभूति प्राप्त करने के लिए दूसरों पर प्रभाव बनाने का प्रयास करना है। अपना निजी लाभ और आत्म प्रोन्नति अक्सर हमें दूसरों की दष्टि में सम्मानित और अच्छा बना देते हैं। आत्म सत्यापन लोगों को अपने आत्म संप्रत्यय को दढ़ करने में सहायता करता है।

आत्म निरीक्षण

आत्म निरीक्षण का अर्थ उस सीमा से है जहाँ तक बाह्य परिस्थिति और दूसरों की प्रतिक्रिया व्यक्ति को व्यवहार को नियमित करने में सहायता करती है। राजनीतिज्ञ, बिक्री कार्यकर्ता, और कलाकार उच्च आत्म निरीक्षण करने वाले व्यक्ति हैं। निम्न आत्मनिरीक्षण वाले व्यक्ति अपने व्यवहार को विश्वास, धारणा अभिरूचि जैसे कारणों के आधार पर नियमित करते हैं। यह देखा गया है कि उच्च आत्म निरीक्षण वाले लोग दूसरों की ओर अधिक ध्यान देते हैं जबकि निम्न आत्म निरीक्षण वाले लोग स्वयं पर अधिक ध्यान देते हैं। उच्च आत्म निरीक्षण वाले व्यक्ति मित्र बनाने के लिए व्यक्ति के कार्य संपादन पर ध्यान देते हैं जब कि निम्न आत्म निरीक्षण वाले मित्र बनाने में अपनी पसंद को वरीयता देते हैं। वे, जिन का आत्मनिरीक्षण उच्च श्रेणी का है, अपनी संपूर्ण योग्यता, जिसका उपयोग कर सकते हैं, का आकलन रखते हैं। वे रणनीतात्मक आत्मप्रस्तुतीकरण के संबंध में बहुत भावुक होते हैं।

आत्मचेतना

यदि हम अपने दैनिक जीवन की जांच करते हैं तो हम अपने को बहुत सी क्रियाओं में व्यस्त पाते हैं। इन क्रियाओं के बीच कभी–कभी हम अपने आप से दूर होते हैं। अपने बारे में हम बहुत कम सोचते हैं। दूसरे शब्दों में हम हमेशा आत्म–केंद्रित नहीं होते। फिर भी कुछ घटनायें हम को स्वयं की ओर लौटने को मजबूर कर देती है। इस तरह हम जब शीशा देखते हैं, स्वयं से बात करते हैं, श्रोताओं या कैमरे के समुख या किसी समूह में एक महत्वपूर्ण स्थिति में होते हैं हम आत्म सजग हो जाते हैं। जब हम आत्म सजग होते हैं हम अपने आंतरिक मानक से अपने व्यवहार की तुलना करने लगते हैं। इस तुलना से नकारात्मक अंतर मिलता है। ऐसी परिस्थितियों में हमारा आत्मसम्मान घटने लगता है। इस स्थिति से निपटने के लिए हमें आत्म अंतर को कम करना चाहिए या आत्म सजगता को स्थिति से स्वयं को हटा लेना चाहिए। यह देखा गया है कि कुछ लोगों का स्वभाव अपने विचारों और भावनाओं का आत्मनिरीक्षण (व्यक्तिगत आत्मचेतना) का होता है है जब दूसरों का स्वभाव बाहरी सार्वजनिक धारणा (सार्वजनिक आत्म चेतना) के प्रति सजग होना होता है।

16.6 आत्म की सजगता : आत्म को आँकने में हम कितने सही होते हैं ?

कभी–कभी यह मान लिया जाता है कि हम अपने बारे में बहुत अच्छी तरह जानते हैं। किंतु वास्तव में यह सही नहीं है। अध्ययनों से पता चलता है कि अपने आत्म संप्रत्यय के बारे में ऐसे बहुत से पक्ष हैं जो हम जानते हैं और उनके बारे में दूसरे लोग भी जानते हैं। दूसरे शब्दों में यह सार्वजनिक है। किंतु निम्नांकित तीन और भी संभावनायें हैं :

1. आत्म के कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो वही व्यक्ति जानता है और दूसरे उनसे अनभिज्ञ होते हैं।
2. आत्म के कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो व्यक्ति स्वयं नहीं जानता अपितु दूसरे लोग जानते हैं।
3. आत्म की कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो व्यक्ति न स्वयं जानता है और न दूसरे ही जानते हैं।

आप सुविधा से ऐसी परिस्थितियों की कल्पना कर सकते हैं जहाँ व्यक्ति की जानकारी में और दूसरों की जानकारी में या अनजाने में विशेषताओं में किसी प्रकार की असंगति हो। स्वस्थ जीवन जीने के लिए व्यक्ति की विशेषताओं की उचित प्रशंसा होनी चाहिए। यह आकलन सत्य पर आधारित होना चाहिए। यह किसी की शक्तियों और दुर्बलताओं के निष्पक्ष ज्ञान और समझ पर आधारित है, जिससे उचित कार्य विधि की योजना की जा सके।

टिप्पणी

जब हम आत्म की चर्चा कर रहे हों इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बहुधा लोग स्वयं के प्रति पूर्वाग्रह रखते हैं। इससे लगता है कि अपने को बचाने की चेष्टा करते हैं और चीजों को इस तरह देखते हैं कि आत्म की सकारात्मक विशेषताओं में वद्धि हो गई है। उदाहरण के लिए किसी कार्य में सफलता के लिए अपनी योग्यता, प्रयास और विशेषताओं को सराहते हैं और सफलता के लिए अवसर या भाग्य जैसे कारकों की बात करते हैं। हर व्यक्ति दूसरों से अपने लिये सकारात्मक प्रशंसा चाहता है चाहे वह सही हो या गलत। यह स्वयं के प्रति गलत धारणा के निर्माण और इससे संबंधित अनेक समस्याओं की ओर ले जाता है।

पाठगत प्रश्न 16.2

कालम में दिये गये शब्दों से कालम ब के वर्णन का मिलान कीजिये :

कालम अ	**कालम ब**
क. आत्म सम्मान	(1) आत्म की व्यवहार परक अभिव्यक्ति
ख. आत्म सामर्थ्य	(2) वह सीमा जहाँ तक बाह्य परिस्थिति और दूसरों की प्रतिक्रियायें व्यक्ति के व्यवहार को नियमित करने में सहायता कर सकती हैं।
ग. आत्म प्रस्तुतीकरण	(3) आत्म संप्रत्यय का मूल्यांकन–घटक
घ. आत्म निरीक्षण	(4) स्वयं के बारे में सोचना
ड. आत्म चेतना	(5) अपनी योग्यता पर विश्वास

16.7 आत्म का अन्य प्रक्रियाओं से संबंध

एक क्षण का चिंतन यह स्पष्ट कर देगा कि आत्म लगभग सभी प्रकार के मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में संलग्न है। हमारा सीखना, प्रत्यक्षीकरण, अभिप्रेरण, स्मति, सभी आत्म की स्थिति और प्रकति से आकार पाते हैं। व्यक्ति को इस तथ्य को पहचान लेना चाहिए कि ये सभी और अन्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें यांत्रिक नहीं हैं। ये आत्म की क्रियायें या कार्य हैं। उदाहरण के लिए जब कोई अपने को दाँव पर लगा हुआ पाता है तब वह इससे निपटने का अधिकतम प्रयास करता है। इसी तरह हम वस्तुओं को देखते और प्रत्यक्ष करते हैं और लोग उस तरीके से काम करते हैं जो उनके अनुकूल होता है।

हाल के वर्षो में शोधकर्ता आत्म प्रत्यय या आत्म के संबंध में उनके विचारों को विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से संबंधित करने में रूचि लेने लगे हैं।

ऐसा पाया गया है स्वतंत्र आत्म प्रत्यय वाले लोग अपनी आंतरिक विशेषताओं और महत्वपूर्ण लक्षणों पर जोर देते हैं। इसके विपरीत अंतर्निर्भर आत्म वाले लोग संबंधों और संदर्भो के बारे में ज्यादा सोचते हैं। इसी तरह दूसरे लोगों के व्यवहार की व्याख्या करते समय अंतर्निर्भर आत्म वाले लोग परिस्थितिजन्य कारकों के महत्व को पहचानते हैं। शोध ने दर्शाया है कि परिस्थितिजन्य और संदर्भ पर निर्भर व्याख्यायें अधिकतर अमरीकियों की तुलना में भारतीय लोगों द्वारा प्रयोग किये जाते हैं।

इस संबंध में आत्म संप्रत्यय में सांस्कतिक विभेदों और विभिन्न प्रक्रियाओं के लिए इसके परिणामों पर ध्यान दिया गया है। एक पूर्व के अनुभाग में इस ओर संकेत किया गया था कि आत्म संप्रत्यय के ये दो प्रकार हैं स्वतंत्र और अंतर्निर्भर। आइये हम जांच लें कि संप्रत्यय के ये दोनों प्रकार संज्ञान, अभिप्रेरण और संवेग से किस प्रकार संबंधित हैं।

आत्म और संज्ञान

आत्म संप्रत्यय के संज्ञान पर प्रभाव विभिन्न तरीकों से पाये जाते हैं। यह पाया जाता है कि स्वतंत्र आत्म–प्रत्यय वाले व्यक्ति अपने आंतरिक गुणों को महत्वपूर्ण मारते हैं। जबकि इसके विपरीत अंतः निर्भर प्रत्यय वाले व्यक्ति समाज एवं संदर्भ पर ज्यादा निर्भर होते हैं।

आत्म और संवेग

कुछ संवेग आंतरिक विशेषताओं पर जोर देते हैं। उदाहरण के लिए अहंकार या श्रेष्ठता की भावना बहुधा तब पाई जाती है जब व्यक्ति कोई कार्य पूर्ण कर लेता है। इसी तरह जब व्यक्तिगत उद्देश्य या इच्छायें (आंतरिक विशेषतायें) अपूर्ण रह जाती हैं तो भग्नाशा होती है। इन परिस्थितियों में संवेगात्मक अनुभव आत्म को सामाजिक संबंधों से अलग कर देते हैं। दूसरी ओर कुछ सकारात्मक संवेग होते हैं जैसे मित्रता की भावना या कत्यज्ञता या सम्मान की भावना। ऐसे संवेग तभी घटित होते हैं जब व्यक्ति दूसरों के निकट या रूचि के अनुकूल संबंध में होता है। ऐसे संवेगों की अनुभूति अंतरवैयक्तिक जुड़ाव को उन्नत बनाते हैं। यह बात नकारात्मक संवेगों के लिए भी सच है जैसे ऋणी होने या अपराध की भावना। यह इसलिये होती है क्योंकि दूसरों से संबंध बने नहीं रहते। संवेगों का यह वर्ग सामाजिक संलग्न संवेग दर्शाते हैं। ऐसा पाया जाता है कि अंतर्निर्भर आत्म संप्रत्यय वाले व्यक्ति स्वतंत्र आत्म संप्रत्यय वाले व्यक्तियों की अपेक्षा सामाजिक संलग्न संवेग का अनुभव अक्सर करते हैं।

आत्म और अभिप्रेरण

प्रायः ऐसा सोचा गया है कि अभिप्रेरण का मुद्दा व्यक्ति की आंतरिक प्रक्रियाओं से संबंधित है। आवश्यकताओं और अभिप्रेरकों के विचार इन्हीं प्रक्रियाओं से संबंधित है। यह दष्टिकोण स्वतंत्र आत्म संप्रत्यय के बहुत निकट है। ये सभी व्यक्ति या 'मुझ' से जुड़ी

अभिप्रेरण की ओर संकेत करते हैं। आत्मनिर्भर आत्म के बारे में यह देखा गया है कि व्यवहार महत्वपूर्ण दूसरों जैसे माता–पिता, शिक्षक, अन्य पारिवारिक सदस्य दूसरों के प्रति दायित्वों और कर्तव्यों की अपेक्षाओं द्वारा निर्देशित होते हैं। इस संदर्भ में उपलब्धि अभिप्रेरक को अध्ययनों से उपयोगी उदाहरण मिलते हैं।

उपलब्धि अभिप्रेरक "श्रेष्ठ बनने की इच्छा" से संबंधित। यह इच्छा सभी संस्कतियों में मिलती है। उन संस्कतियों में जिनमें स्वतंत्रा आत्म प्रभावी होता है यह आवश्यकता व्यक्तिगत होती है, जबकि उन संस्कतियों में जहाँ अंतर्निर्भर आत्म का प्रभाव होता है यह आवश्यकता अंतर्वैयक्तिक और सामाजिक रूप से निर्मित होती है। भारत के संदर्भ में जहाँ सामाजिकता और अंतर्निर्भर आत्म का प्रभाव होता है सामाजिक दिलचस्पी उपलब्धि के बारे में चिंतन का महत्वपूर्ण पक्ष उभर कर आती है।

पाठांत अभ्यास

1. आत्म के संप्रत्यय का वर्णन कीजिए।
2. भारतीय दर्शन में वर्णित पाँच कोशों के नाम बताइये।
3. आत्म मूल्यांकन की संभव विधियों का वर्णन कीजिये।
4. आत्म संप्रत्यय संवेग और अभिप्रेरण से संबंध की चर्चा कीजिए

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

16.1

1. स्वतंत्र, अंतर्निर्भर
2. विलियम जेम्स
3. भौतिक शरीर

16.2

(क) 3

(ख) 5

(ग) 1

(घ) 2

(ड.) 4

टिप्पणी

पाठांत अभ्यास के लिए संकेत

1. संदर्भ अनुभाग 16.1
2. संदर्भ अनुभाग 16.2
3. संदर्भ अनुभाग 16.4
4. संदर्भ अनुभाग 16.5

17

आत्म और मनोवैज्ञानिक प्रक्रम

जैसे–जैसे लोग बड़े होते हैं वे अपने आत्म का अपना संप्रत्यय विकसित कर लेते हैं जो यह निश्चित करता है कि वे दूसरों से कैसे सम्बन्ध बनाते हैं ओर विभिन्न क्रियायें सम्पादित करते हैं। यद्यपि कि हमारा आत्म संप्रत्यय स्थिर नहीं रहता, अपितु जीवन को विभिन्न अवस्थाओं में बदलता रहता है। हम दूसरों को व्यक्ति के रूप में प्रत्यक्षीकत करते हैं, उनसे सम्बन्ध बनाते हैं और मैत्री और अन्य प्रकार के निकट के सम्बन्ध विकसित करते हैं। हम आत्म संयम भी विकसित करते हैं और नैतिक रूप से विकसित होते हैं। इस प्रकार आत्म केवल व्यैक्तिक कार्यों से सम्बन्धित अपना गुण नहीं रहता। यह उसके पार जाता है और जिस सामाजिक संसार में हम रहते हैं से सम्बन्धित करता है। वास्तव में, यह, आत्म सामाजिक संसार से परस्पर आदान–प्रदान के रूप में जोड़ता है। यह सामाजिक संसार के साथ हमारी अन्तःक्रियाओं को प्रभावित करता है और उससे प्रभावित होता है। इस प्रक्रम में आत्म भी सामाजिक संसार से प्रभावित होता है। इस पाठ में आप कार्यरूप में आत्म के बारे में पढ़ने जा रहे हैं और देखेंगे कि हम दूसरों के साथ कैसे दिखते और और अन्तःक्रिया करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप समर्थ होंगेः

- सम्पूर्ण जीवन विस्तार में आत्म का विकास स्पष्ट करने में;
- आत्म संयम के अर्थ को समझने में;
- नैतिक विकास की अवस्थाओं को स्पष्ट करने में; और
- सामाजिक पक्ष के व्यवहार के विकास की अवस्थाओं का वर्णन करने में।

टिप्पणी

17.1 जीवन विस्तार के परिप्रेक्ष्य में आत्म

हम में से अधिकांश इस बात से सहमत हैं कि मानव प्राणी का आत्म होता है। इसे एक भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व स्वयं के गुणों और कार्यों वाला माना जाता है। बहुधा इसे हमारे जीवन के अनुभवों का स्वाभाविक पक्ष समझा जाता है। यद्यपि यह मान्यता आधारहीन लगती है जब हम बच्चों के जीवन को समझने का प्रयास करते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि प्रथम वर्ष के मध्य में आत्म पहचान का कुछ अपरिष्कत विचार पाया जाता है। इसी काल में बच्चे दूसरे शिशुओं के आवाजों और मुखाकति की प्रतिमाये बनाने लगते हैं। कभी–कभी इसे आत्म–अन्य भेद के आरंभ का संकेत व्याख्यायित किया जाता है।

शैशव: शीशे का प्रयोग करते समय यह पाया गया है कि विभन्न आयु समूहों के बच्चे देखी गई प्रतिमाओं के प्रति भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं। 15 से 24 मास के मध्य शिशु दश्यगत आत्म संप्रत्यय बनाते पाये जाते हैं। वीडियो टेप का प्रयोग करके देखा गया है कि तीन वर्ष के बच्चे को स्पष्ट आत्मज्ञान नहीं होता। चार और पाँच वर्ष के बच्चे अपना प्रतिनिधित्व अच्छी तरह कर पाते हैं। नये चलने वाले बच्चे दूसरे बच्चों को आयु और लिंग के आधार पर बांटने लगते हैं। बचपन से संवर्ग मूर्तरूप रहते हैं (जैसे स्वामित्व, जो कार्य वे कर सकते हैं)।

बचपन और किशोरावस्था: प्रारंभिक बचपन में बच्चे स्वयं को मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के आधार पर स्पष्ट समझ शुरू करता है। वे अभिवत्तियों के बारे में सोचने लगते हैं। किशोरावस्था में आत्म का प्रतिनिधित्व और स्पष्ट और सूक्ष्म हो जाता है। वे अनुभव करते हैं कि वे सबके साथ और हर परिस्थिति में एक से व्यक्ति नहीं हैं। एरिकस्न के अनुसार पहचान किशोरावस्था में विकास का महत्वपूर्ण बिदु है। पहचान से एक स्थायी बोध आता है कि वह व्यक्ति कौन है और उसके मूल्य और आदर्श क्या हैं। बहुत से किशोर पहचान का संकट अनुभव करते हैं आत्म का एक तर्क संगत और बने रहने वाला बोध पाने में असफल रहते हैं। उन्हें अपनी भूमिका, मूल्य और व्यावसायिक चुनावों के प्रति वचनबद्ध रहने में कठिनाई अनुभव होती है। कुछ किशोर पर्याप्त आत्म खोज और अन्तर दर्शन के बारे में अपनी पहचान बनाते हैं। दूसरे बिना अधिक खोजबीन किये ही वचनबद्ध हो जाते हैं। इससे पहचान का विकास अवरुद्ध हो जाता है।

प्रारंभिक प्रौढ़ता: विकास की इस अवस्था में निकटता बनाम एकान्त के विरोध की चुनौती का सामना करना पड़ता है। निकटता का आशय है वचनबद्ध और टिकाऊ सम्बन्ध बनाना है। इसमें रोमांचकारी और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध आते हैं। विकासक्रम में व्यक्ति को माता/पिता, चाचा/चाची जैसा अपनी भूमिका को पुनःस्पष्ट करने की आवश्यकता होती है।

मध्य अवस्था: इस अवस्था में लोग अगली पीढ़ी से सम्बन्ध और समाज के प्रति अपने योगदान की चिन्ता करने लगते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति उत्पत्ति बनाम ठहराव के संकट का सामना करता है। लोगों से अधिक से अधिक उत्पादक क्रियाओं में संलग्न

रहने की अपेक्षा की जाती है। वास्तव में 'मध्य जीवन संकट' एक विख्यात पदबन्ध हो गया है। यह जीवन की सामान्य लय में बाधा उत्पन्न कर देता है। कुछ लोगों के लिये परिवर्तन धीमी गति से होते हैं और दूसरों के लिये इनका रूप उग्र होता है।

वद्धावस्थाः आयु संभाविता में बढ़ोत्तरी के साथ ही वद्ध लोगों की आबादी में बढ़ोत्तरी हुई है। वद्ध लोगों के सामने सम्पूर्णता बनाम निराशा की बहुत बड़ी चुनौती है। शारीरिक स्वास्थ्य में कमी, सहयोग में कमी और शारीरिक रोग वद्ध लोगों के जीवन को कष्टप्रद बना देते हैं। सामाजिक गतिशीलता और परम्परागत निम्नस्तरीय आत्म संप्रत्यय से पीड़ित रहते हैं। फिर भी जो अपने पिछले जीवन को यह सोचकर कि उन्होंने अच्छा जीवन जिया है, सन्तोष का अनुभव करते हैं, उन्हें सम्पूर्णता की अनुभूति होती है। दूसरों को पछतावा और निराशा हो सकती है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि आत्म की धारणा जीवन यात्रा के बीच विभिन्न रूप ग्रहण करती है और महत्वपूर्ण परिवर्तनों के मध्य से गुजरती है। यह लोगों के अनुभवात्मक संसार में परिवर्तनों को व्यक्त करती है। फिर भी, लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। यह एक शक्तिशाली बल के रूप में कार्य करती है जो व्यवहार को निर्देशित करती है और सामाजिक परिस्थितियों में अन्तःक्रियाओं को ढालती है। आत्म का रूपान्तरण होता है और व्यक्ति आत्म संरचना में बहुत से तत्व जुड़ते और निकलते हैं। अक्सर लोग आदर्श आत्मक के लिये प्रयास करते हैं। उनसे अपने समाज के स्वस्थ विकास में योगदान करने की अपेक्षा की जाती है।

महात्मा गांधी और मदर टेरेसा जैसे लोग मनोवैज्ञानिक दष्टि से बहुत सशक्त थे और उन्होंने समाज में अत्याधिक योगदान किया है। उत्तम रीति से विकसित विवेक उनका सबसे बड़ा गुण था। उनके विचार , वाणी और कार्य एक साथ होते थे। गांधी जी का विचार था कि सत्य की सदा विजय होती है इसलिये वे केवल सत्य की बोलते थे। वे जो कहते थे करते भी थे। मदर टेरेसा गरीबों और रोगियों के बारे में चिन्ता करती थी। वे उनके कल्याण के लिये कहती थी और इसी उद्देश्य के लिये उन्होंने सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। इसी प्रकार विश्व के बहुत प्रसिद्ध लोगों ने समाज के कल्याण के लिये बहुत योगदान किया है। ये सभी अपनी सत्यनिष्ठा के लिये जाने जाते हैं। भली प्रकार समन्वित लोग केवल अपने व्यक्तिगत विकास में ही नहीं किन्तु समाज के विकास में भी योगदान करते हैं। ऐसी सम्पूर्णता को प्राप्त करने के लिये प्रत्येक वयक्ति को अपनी संभाव्य कुशलताओं को विकसित करना चाहिये, आगे चलकर ये लोग मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दष्टि से सक्षम हो जाते हैं और एक स्वस्थ जीवन जीते हैं। सामाजिक क्षमता प्राप्त करके और समाज को योगदान करके, ये लोगों का सम्मान प्राप्त करते हैं।

17.2 आत्म-संयम और इसका विकास

आत्म संयम अपने व्यवहार को अधिकतम संतुष्ट और पुरस्कत करने वाले व्यवहार को सीखने और नियमित करने का उपक्रम है। इस उद्देश्य के लिये लोग आत्म संयम के

टिप्पणी

लिये अनेक रणनीतियों का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिये, एक मोटा व्यक्ति अपना वजन कम करने के लिए, एक लगातार धूम्रपान करने वाले को धूम्रपान कम करने और एक अत्याधिक तनावयुक्त व्यक्ति को तनाव कम करने के लिस आत्म संयम के तरीके सिखाये जाते हैं।

आत्म संयम के चरण: आत्म संयम के विकास में निम्नांकित महत्वपूर्ण चरण हैं:

1. **नियत कार्य का निष्पादन करना:** यह एक विशेष समस्या के समाधान के लिये किये गये कार्य की ओर संकेत करता है।
2. **निष्पादन और परिणाम का स्व-निरीक्षण करना:** इसका अर्थ है वास्तविक प्रेक्षण और किये गये कार्य का लेखा रखना।
3. **आत्म मूल्यांकन:** इसके अन्तर्गत स्वयं की क्षमता के बारे में अपने विश्वासों में संशोधन करना।
4. **आत्म-पुनर्बलन:** इसका अर्थ है उपलब्धि को स्वीकारना और सहमति देना है जो वास्तविक पुरस्कार या रचनात्मक आत्म कथन की ओर ले जा सकता है।

निम्नांकित उदाहरण में एक बच्चे को शान्त रहना और कठिन परिस्थिति पर नियंत्रण करना और प्रतिक्रिया के लिये उत्तेजित न होना सिखाया जाता है।

1. **उत्तेजना के प्रति तैयार करना:** बच्चे को कठिन परिस्थिति की प्रत्याशा करना सिखायें और उसे बताइये कि वह उत्तेजित न हो।
2. **कठिनाई का सामना करना:** कल्पना द्वारा अभिनय या अभ्यास, बच्चे को उत्तेजना का सामना करना सिखाया जाता है किन्तु उसी समय नियंत्रण में रहना जिससे वांछित अनुक्रिया हो सके।
3. **उत्तेजना से सफलतापूर्वक निपटना:** मांशपेशियों का कसाव, भय या क्रोध का आने पर बच्चे को शारीरिक अनुक्रिया के प्रति सजग किया जाता है और इनसे सफलतापूर्वक निपटने का कौशल सिखाना।
4. **परिणामों के बारे में सोचना:** बच्चे को उत्तेजना– सकारात्मक या निषेधात्मक से निपटने के परिणाम के बारे में सोचना सिखाया जाता है। बच्चे को स्वयं के बारे में, दूसरों की अनुक्रियाओं तथा अन्य परिणामों के बारे में अधिक सोचने को प्रोत्साहित भी किया जाता है। इसके लिये एक डायरी रखना, मित्रों से बात करना, माता–पिता से बात करना और सामान्यतः संभावनाओं के बारे में अधिक सजग होना हो सकता है।

आत्म निर्देशात्मक प्रशिक्षण (एस.आई.टी.): इस प्रकार का निर्देशन 'आत्म–वार्ता' अनुक्रियाओं पर जोर देकर कुशलता के मुख्य क्षेत्रों के विकास पर बल देता है। आत्म–निर्देशन के निम्नांकित चरण हैं:

1. समस्या को पहचानने का प्रशिक्षण
2. आत्म–प्रश्न विषयक कौशल का शिक्षण
3. अवधान का शिक्षण– उपयुक्त कौशलों पर जोर देना और प्रतिक्रिया करना

4. आत्म–पुनर्बलन कौशल का शिक्षण करना जिससे बच्चे अपनी अनुक्रियाओं का मूल्यांकन कर सकें और ग्रहण करने वाली अनुक्रियाओं को पुरस्कत कर सकें।
5. आत्म सुधार और सुफलतापूर्वक निपटने के विकल्प बच्चों को अपने व्यवहार का निरीक्षण करने, विकल्पों का मूल्यांकन करने और वैकल्पिक समाधान और पहुंचने के योग्य बनाते हैं।

बॉक्स 17.1: *आत्म निर्देशन एक उदाहरण*

1. समस्या की पहचानः आप लम्बे समय तक पढ़ने के लिए नहीं बैठ सकते।
2. प्रश्न वाचक कौशलः आपको यह कठिनाई कब से है? दिन के किस समय आपके साथ ऐसा होता है? क्या यह किसी विषय से सम्बन्धित है?
3. अवधानः (क) एक साथ केवल तीस मिनट तक बैठिये; (ख) पांच मिनट के लिए विश्राम लीजिये, पुस्तकों को हटाकर वह कीजिए जो आपको अच्छा लगता है (जैसे अपनी मां से गप–शप करना, रेडियो सुनना इत्यादि); (ग) पढ़ाई पर वापस आइये और स्वेच्छा से अपने अवधान को पढ़ाई की तरफ लाइये।
4. आत्म पुनर्बलनः (क) जब आपने कुछ समय के लिए अबाधित पढ़ाई कर ली है, आप अपने को यह कहकर पुरस्कत करें मैं इस काम को दस मिनट तक कर लिया है। अब मैं इसे बीस मिनट तक कर सकता हूँ, या जब आप कुछ दिनों बाद अपने उद्देश्य को पा लेते हैं तो आप वह काम करें जिसे करना आपको सबसे अच्छा लगता है, अपने को पुरस्कत करें। दूसरी ओर यदि आप अपने प्रयासों से बाधित होते हैं तो आप स्वयं को अपनी सबसे अधिक पसन्द के काम को छोड़कर दण्डित करें। (जैसे अपने प्रिय टी.वी. सीरियल को देखना)।
5. आत्म सुधार और सफलतापूर्वक निपटने का विकल्पः जब आप अनपेक्षित कार्य करें तो अपने को सुधारें। इसमें जब आप बाधित हों तो फिर से अपने कार्य पर ध्यान दें। बाधा से सफलतापूर्वक निपटने के लिये अपने पढ़ाई के स्थान में परिवर्तन कर सकते हैं जैसे पुस्तकालय जैसे शान्त स्थान पर चले जायें।

इस प्रकार आत्मोन्नति के लिये आत्म–नियंत्रण के तरीकों का प्रयोग किया जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. आत्म–नियंत्रण से आप क्या समझते हैं?
2. संक्षेप में किन्हीं दो स्थितियों का वर्णन करें जिनमें आत्म नियंत्रण प्रभावी हो सकता है।

टिप्पणी

17.3 नैतिक विकास

''सही'' और ''गलत'' की धारणाओं का विकास सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। ये धारणायें व्यक्ति को अपनी अभिरुचियों के सन्तुलन तथा दूसरों के होने में सहायता करती हैं। अन्य शब्दों में ऐसे नियमों को ग्रहण करना नैतिकता को सुगम बनाते हैं या नियामक स्तर जो लोगों के सामाजिक जीवन को संगठित करने में सहायक होते हैं। नैतिकता का विकास अवस्थाओं से होता है। दूसरे व्यक्तियों के विचार का विकास और परिप्रेक्ष्य लेना इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। शैशवकाल में बच्चे सामाजिक अन्तःक्रिया को एक पारस्परिक प्रक्रम के रूप में पहचानना प्रारंभ करते हैं। लोगों के कार्य स्वयं अपने पर ही निर्भर करते हैं यह अनुभव करना एक बड़ी उपलब्धि है। प्रारंभ में आठ वर्ष की आयु तक बच्चे सीधी और मूर्तरूप लक्षणों की ओर ध्यान देते हैं और दूसरों की प्रशंसा करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। धीरे–धीरे वे दूसरों के दष्टिकोण को समझना सीखते हैं। यह योग्यता बचपन से प्रारंभ होकर किशोरावस्था तक चलती है।

संज्ञानात्मक विकास की प्रतिकति को स्पष्ट करने का प्रयास करने वाले शोधकर्ताओं ने यह देखने का प्रयास किया है कि नैतिक तार्किकता कैसे विकसित होती है। पियाजे ने पाया कि नौ से दस वर्ष तक के बच्चे दबाव की नैतिकता दर्शाते हैं।

इस अवस्था में बच्चे सामाजिक नियमों की अनुरूपता को सोचते हैं। ऐसे नियम घटना के एक पक्ष पर ध्यान देते हैं और दूसरे को अनदेखा करते हैं। उदाहरण के लिए यदि बच्चे को यह तय करने को कहा जाय कि दण्ड का भागी कौन है, एक बच्चा जो अपनी प्रिय डिश चुराने के लिये रसोई में जाता है और उस जार तक पहुंचने में, जिसमें उसकी प्रिय डिश रखी है, कप तोड़ देता है, या दूसरा बच्चा जो नहीं जानता और अचानक दरवाजा खोल देता है और पांच कप तोड़ देता है जो दरवाजे के पास रखे थे।

छोटे बच्चे ने पहले बच्चे की अपेक्षा दूसरे वाले बच्चे को जिसने पांच कप तोड़े थे अधिक दण्ड प्रस्तावित करता है। बड़े बच्चों ने दूसरा तर्क अपनाया। वे व्यक्ति के इरादे के बारे में सोचते हैं और नियमों को अपरिवर्तनीय नहीं मानते। आवश्यकता पड़ने पर नैतिक नियम बदले जा सकते हैं। यह सहयोग की नैतिकता मानी जाती है। यदि हम बच्चों के तर्क की तुलना करें तो छोटे बच्चों की नैतिकता स्वाभाविक है।

सामाजीकरण के प्रक्रम में नैतिक विश्वास आत्मसात किये जाते हें और वे नैतिक विकास का आधार बनाते हैं। नैतिक संप्रत्यय बच्चे में अति प्रारंभिक आयु से विकसित होने लगते हैं। प्रथम अवस्था में नैतिकता परिणामों पर आधारित होती है, अर्थात् लगभग सात वर्ष की आयु के पूर्व कार्यों को श्रेणीबद्ध रूप में देखते हैं, जो कार्य 'सकारात्मक' परिणाम दर्शाते हैं वे ''अच्छे'' और जो नकारात्मक परिणाम लाते हैं वे 'बुरे''। यह प्रतिकति वस्तुगत नैतिक रुझान कहलाती है। सात वर्ष की अवस्था के बाद हम विभिन्न कार्यों के पीछे की मंशा पर ध्यान देते हैं। इसे व्यक्तिगत नैतिक रुझान कहा जाता है और यह दस वर्ष की आयु के आस–पास विकसित होता है।

नैतिक तर्क तीन विभिन्न स्तरों से गुजरते हैं– पूर्व पारंपरिक अवस्था, पारंपरिक अवस्था और उत्तर पारंपरिक अवस्था।

पूर्व–पारंपरिक अवस्था में तर्क बहुत कुछ आत्म केन्द्रित होता है और व्यक्ति के व्यवहार के परिणामों पर ध्यान देता है। पारंपरिक अवस्था में तर्क मान्य नैतिक नियमों पर ध्यान देता है। बाद में किशोरावस्था में व्यक्ति पश्चात् पारंपरिक अवस्था में प्रेवश करते हैं जिसमें वे अमूर्त सिद्धान्तों पर निर्भर करते हैं। कोलबर्ग द्वारा नैतिक विकास की कल्पित अवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

पूर्व-पारंपरिक स्तर

प्रथम अवस्थाः नैतिक निर्णय आज्ञाकारिता और दण्ड पर निर्भर करता है जो कार्य अधिकारी के प्रति आज्ञाकारिता दर्शाते हैं और व्यक्ति को दण्ड से बचने की अनुमति देते हैं, उन्हें ''अच्छा'' कहा जाता है।

दूसरी अवस्थाः वे कार्य जो कि व्यक्ति की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं ''अच्छे'' माने जाते हैं जो नहीं करते वे ''बुरे''।

पारंपरिक स्तर

तीसरी अवस्थाः जो कार्य दूसरों के द्वारा अनुमोदित होते हैं वे ''अच्छे'' माने जाते हैं और जो अनुमोदित नहीं होते ''बुरे'' माने जाते हैं।

चौथी अवस्थाः जिन कार्यों के द्वारा व्यक्ति ''अपना कर्तव्य पालन'' करता है या जो कानून और अधिकारी के प्रति सम्मान दर्शाते हैं ''अच्छे'' माने जाते हैं। जो कार्य इस कर्तव्य भाव का उल्लंघन करते हैं ''बुरे'' माने जाते हैं।

उत्तर पारंपरिक स्तर

पांचवी अवस्थाः वे कार्य जो समुदाय की भलाई के अनुरूप होते हैं उन्हें ''अच्छा'' माना जाता है। जो कार्य समुदाय के कानूनों का पालन नहीं करते ''बुरे'' कहे जाते हैं।

छटी अवस्थाः वे कार्य जो व्यक्ति के स्वचयनित न्याय के मानकों के अनुरूप होते हैं ''अच्छे'' कहे जाते हैं जो कार्य इन मानकों के अनुरूप नहीं होते ''बुरे'' कहे जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 17.2

1. नैतिक रुझान को दिशानिर्देशन के वैकासिक स्वरूप की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

   .....

2. कोलबर्ग के अनुसार नैतिक तर्क कितने स्तरों से गुजरता है?

   .....

बाक्स 17.2

स्वयं प्रयास कीजिये

देखिये क्या आपने परवर्ती बचपन और किशोरावस्था के मध्य नैतिकता के प्रति अपनी अवधारणा में परिवर्तन अनुभव किये। आपने कबसे यह जानना शुरू किया कुछ बातें बुरी होने के कारण योग्य नहीं हैं जबकि अच्छी बातों को दुहराया जाता है।

उन लोगों की सूची बनाओ जो आपके नैतिक विकास के लिए उत्तरदायी हैं।

कोलबर्ग कुछ परिस्थितियों का प्रयोग करते थे जिनमें नैतिक दुविधा प्रस्तुत की जाती है और व्यक्ति का काम उस दुविधा का समाधान खोजना है। समाधान व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त नैतिक तर्क की अवस्था की ओर संकेत करता है। सामान्य रूप से नैतिक ढंग से कार्य करने में नैतिक तर्क की उच्च अवस्था के विचार की आवश्यकता है। अध्ययनों से पता चलता है कि जोखिम का प्रत्यक्ष स्वरूचि और सामाजिक परम्पराओं जैसे कारकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अध्ययनों ने यह भी बताया है कि बच्चों का नैतिक व्यवहार भिन्न परिस्थितियों में भिन्न प्रकार का होता है। उदाहरण के लिये एक स्थिति (घर) में धोखा देना हो सकता है किन्तु स्कूल में नहीं। संकेत मिलता है कि परिस्थिति जन्य कारकों की अहं भूमिका होती है।

17.4 परिवार की भूमिका

हाल के अध्ययनों ने नैतिक विकास में परिवार की भूमिका को दर्शाया है। सही और गलत के सम्बन्ध में पारिवारिक आदान–प्रदान और माता–पिता के द्वारा नियमों की अभिव्यक्ति नैतिकता के विकास में योगदान करते हैं। उचित व्यवहार का विचार दो वर्ष की अवस्था में प्रारंभिक रूप से विकसित होने लगता है। माता–पिता के द्वार ग्राह्य व्यवहार पर बल नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार के बाहर स्कूल, मित्र और पड़ोस भी नैतिकता के विकास में योगदान करते हैं।

गिलिगन का कहना है कि लड़के स्वतंत्र और उपलब्धि केन्द्रित सामाजिक होते हैं जबकि लड़कियां देख–भाल और उत्तरदायित्व का भाव रखते हुये सामाजिक होती हैं। नारीत्व को बहुधा आत्मत्याग और दूसरों की चिन्ता करने से जोड़ा जाता है।

यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि नैतिकता के प्रश्न विभिन्न संस्कतियों में भिन्न तरीकों से लिये जाते हैं। उदाहरण के लिये पाश्चात्य समाज में प्रचलित दष्टिकोण पाश्चात्य संस्कति से भिन्न अन्य संस्कतियों में उपयुक्त न समझे जा सकते हों। उदाहरण के लिये भारतीय संदर्भ में असंबद्ध वस्तुगत मूल्य महत्वपूर्ण हैं। ऐसे मूल्य मानवीय और आध्यात्मिक प्रतिष्ठा पर आधारित हैं।

17.5 सामाजिक वयवहार का पक्ष और विरोध

समाज के पक्ष में व्यवहार दूसरों को लाभ पहुंचाते हैं। इनमें दूसरों की परेशानियों में सहयोग, मदद करना और दुःख बांटना आते हैं। बच्चे सहानुभूति के विकास में चार

संभावित अवस्थाओं से गुजरते हैं जो उनके व्यवहार को समाज के पक्ष में संभव बनाते हैं।

प्रथम अवस्था में शिशुओं को आत्म और दूसरों में भेद करने में कठिनाई होती है। वे रोते हैं जब दूसरे रोते हैं और वे दूसरों के हंसने पर हंसते हैं। एक वर्ष बाद धीरे–धीरे उनमें दूसरों से भिन्न आत्म का बोध विकसित होने लगता है और यहां पर वे दूसरी अवस्था में प्रवेश करते हैं जिसे अहं केन्द्रित सोच कहा जाता है। वे दूसरों की उसी तरह मदद करते हैं जैसी वे अपने लिये दूसरों से चाहते हैं। इसके बाद तीसरी अवस्था आती है जिसमें वे बच्चे परिस्थिति विशेष सहानुभूति दर्शाते हैं। अन्त में जब वे चौथी अवस्था में पहुंचते हैं तब वे अपनी दुःख की अभिव्यक्ति दूसरों के दुःख के साथ करते हैं। वास्तव में चौथी अवस्था में सहानुभूति का केवल उपयुक्त प्रदर्शन ही दर्शाया जाता है, अर्थात् दूसरे लोग, उनसे जो उपयुह्म सहानुभूति युक्त प्रतिक्रिया दिखाते हैं, केवल संवेगात्मक समर्थन पाते हैं।

बच्चे सहायतापूर्ण व्यवहार परिचित लोगों के अनुकरण करके सीख सकते हैं। उत्तरदायित्व लेने, भूमिका निभाने, वांछित व्यवहार जब भी घटित होता है के पुनर्बलन के अवसर पुरोसामाजिक व्यवहार के विकास को मजबूत करेंगे।

समाज विरोधी व्यवहार के अन्तर्गत भगोड़ापन, अपचार, चोरी, विध्वंसक वत्ति और मान्य सामाजिक नियमों और रीतियों का उल्लंघन करने के अन्य रूप आते हैं। समाज विरोधी व्यवहार के कुछ मामलों के कारक तत्व पर्यावरणीय के बजाय व्यक्तिगत अधिक हो सकते हैं, जबकि अन्य मामलों में इसका उल्टा हो सकता है। फिर भी, ज्यादातर व्यक्तिगत और पर्यावरणीय प्रभावों का भिन्न अनुपात में सम्मिश्रण होता है, जो अपचारी व्यवहारों की ओर ले जाता है।

समाज विरोधी मनोवैज्ञानिक प्रबन्धन के अन्तर्गत सामाजिक रचनात्मक व्यवहार के लिए परामर्श और निर्देशन आत्मविश्वास प्रशिक्षण या सामाजिक कौशल प्रशिक्षण आते हैं जो उन्हें आक्रमक व्यवहार छोड़ने या आक्रमक व्यवहार को कुछ रचनात्मक व्यवहार में बदलने योग्य बना देंगे। यह विकासोन्मुख बच्चे के लिये तथा साथ ही समाज के लिये लाभप्रद होगा।

पाठगत प्रश्न 17.3

1. पुरोसामाजिक व्यवहार के दो उदाहरण दीजिये।
2. किन्हीं दो तकनीकों का उल्लेख कीजिए जो पुरोसामाजिक व्यवहार को मजबूत कर सकते हैं।
3. समाज विरोधी व्यवहार के कोई तीन उदाहरण दीजिये।

आपने क्या सीखा

- आत्म नियंत्रण एक प्रक्रम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार को इस तरह नियमित करना सीखता है जिससे उसे अधिकतम सन्तोष प्राप्त हो सके।
- लगातार धूम्रपान करना, भूख से ज्यादा खाना, अनियंत्रित व्यवहार कुछ ऐसी अनुक्रियायें हैं जिन्हें आत्म नियंत्रण द्वारा सुधारा जा सकता है।
- आत्म निर्देशन प्रशिक्षण आत्म नियंत्रण का एक तरीका है। यह आत्मवार्ता पर बल देता है।
- नैतिक विकास की आधारशिला उस समय रखी जाती है जब नैतिक विश्वास आत्मसात कर लिये जाते हैं। जीन पियाजे और कोलबर्ग विख्यात सिद्धान्तवादी हैं जिन्होंने नैतिक विकास पर अपने विचार रखे।
- पुरोसामाजिक व्यवहार एक अनुक्रिया है जो समाज के सदस्यों को उनके विकास में लाभ पहुंचाती है जो बदले में समाज को सकारात्मक दिशाओं में बढ़ने और विकसित होने योग्य बनाता है। असामाजिक व्यवहार वह है जो समाज कल्याण एवं विकास को बाधित करता है।

पाठान्त प्रश्न

1. किसी समस्या की स्थिति में आप आत्म नियंत्रण करने की प्रक्रिया को किस प्रकार लागू करेंगे? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।
2. नैतिकता कैसे विकसित होती है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

17.1

1. आत्म नियंत्रण एक प्रक्रम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार को इस तरह नियमित करना सीखता है जिससे उसे आत्म सन्तोष प्राप्त हो सके।
2. नैतिक विकास की अवस्थाओं की चर्चा कीजिये।

17.2 1. आंतरिक द्वन्दों का समाधान 2. तीन मुख्य स्तर

17.3 1. सहयोग 2. भूमिका निभाना और स्वयं को तदीनुरूप ढालना
3. चोरी करना, व्यभिचार, अपचार

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. सन्दर्भ 17.2 2. सन्दर्भ 17.3

18

व्यक्तित्व के सिद्धान्त

हम में से हर एक व्यक्ति अनेक वस्तुओं को दूसरों के साथ बांटता है। बहरहाल, समानताओं के अतिरिक्त हम देखते हैं कि लोग दिखने में तथा व्यवहार में अलग–अलग होते हैं। व्यक्तित्व का अध्ययन मानव की व्यक्तित्वता के अध्ययन से संबंधित है। इस विषय ने एक सामान्य व्यक्ति के साथ–साथ शैक्षिक मनोवैज्ञानिकों का ध्यान भी आकर्षित किया है।

मानव के रूप में हममें से प्रत्येक व्यक्ति सोचने, महसूस करने तथा क्रिया करने की कतिपय विशिष्ट प्रतिमानों को दर्शाता है। ये प्रतिमान दर्शाते हैं कि हम कौन हैं तथा अन्य व्यक्तियों के साथ हमारे संव्यवहार के लिए आधार उपलब्ध कराता है। दिन–प्रति–दिन के जीवन में प्रायः हम ऐसे लोगों से मिलते हैं जिन्हें 'आक्रामक', 'मजाकिया', खुशमिजाज़ और इसी प्रकार कहा जा सकता है।

ये लोगों के प्रभाव होते हैं जो कि हमारे साथ रहते हैं और इसका प्रयोग उनसे बातचीत करते समय करते हैं। इसका अर्थ यह है कि ''व्यक्तित्व'' शब्द का प्रयोग हम बार–बार करते हैं। व्यक्तित्व का अध्ययन मनोवैज्ञानिक का ध्यान भी आकष्ट करता है और उन्होंने व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। लोगों के व्यक्तित्व का आंकलन करने के लिए उन्होंने कतिपय तरीके भी विकसित किए हैं। व्यक्तित्व से संबंधित सूचना का प्रयोग विभिन्न नौकरियों में लोगों का चयन करने में, मनोवैज्ञानिक सहायता से जरूरतमन्द लोगों को मार्गदर्शन करने तथा उनकी संभाव्यता की मैपिंग करने में किया जाता है। इस प्रकार व्यक्तित्व का अध्ययन मानव व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान करता है। यह अध्याय व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को सीखने में आपकी सहायता करेगा।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप निम्नलिखित कार्य को करने में सक्षम होंगेः

- व्यक्तित्व की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे;
- मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, इसके क्षेत्र, सामाजिक ज्ञान तथा व्यक्तित्व के मानवीय सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे;
- व्यक्तित्व मूल्यांकन के तरीकों के साथ त्रयगुन संप्रत्य की अवधारणा की व्याख्या करने; और
- व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या करने में।

18.1 व्यक्तित्व की अवधारणा

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग अनेक क्षेत्रों में किया जाता है जिसमें व्यक्ति के स्पष्ट विशेषताएं शामिल होती हैं। बहरहाल, मनोवैज्ञानिक इसका प्रयोग सोचने के विभिन्न लक्षण, फिलिंग (अनुभूति) तथा क्रिया–कलाप का अवलोकन करने के लिए करते हैं। लाक्षणिक पद्धति से हम सुसंगत तथा सुस्पष्ट विचारों, अनुभवों तथा कार्यों को सुव्यवस्थित करते हैं।

जब हम व्यक्तित्व के बारे में बात करते हैं तो हम सामान्यतः समग्रता अथवा संपूर्ण व्यक्ति का अवलोकन करते हैं। इस प्रकार, विभिन्न स्थितियों में व्यक्ति द्वारा दिखाई गई सहनशीलता व्यक्तित्व का प्रमाण चिन्ह है। व्यक्तित्व के सिद्धान्तों की रोचकता ''व्यक्तित्व'' के शाब्दिक अर्थ से परे है जिसका प्रयोग प्राचीन ग्रीक ड्रामा में एक्टरों द्वारा प्रचुरता से किया जाता था। इसके प्रतिकूल व्यक्तित्व सिद्धान्तवादियों के विचार में ''व्यक्तित्व'' व्यक्ति के यथार्थ के रूप में है। यह एक व्यक्ति के ''सत्य'' आन्तरिक प्रकति में होता है। इसका सही अर्थ यह है कि समझदार व्यक्तित्व में एक व्यक्ति दूसरे पर बराबर महत्व रखता है। बहरहाल, व्यक्तित्व की अवधारणा को मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनेक तरीके से पारिभाषित किया गया है और यह सैद्धान्तिक पहलू अथवा स्थिति है जो कि हमारा ध्यान व्यक्तित्व के विशेष पहलुओं की ओर आकष्ट करता है।

समझदार व्यक्तित्व कठिन तथा चुनौतीपूर्ण कार्य को निष्पादित करता है। यह अत्याधिक मिश्रित होता है तथा समग्र व्यक्तित्व की व्याख्या करने के लिए एकल सिद्धान्त समर्थ नहीं है। विभिन्न सिद्धान्तों के दष्टिगत व्यक्तित्व की संरचना तथा कार्य कलाप विभिन्न स्थितियों से होता है। यहां व्यक्तित्व के अनेक सिद्धान्त बताए गए हैं। प्रत्येक सिद्धान्त व्यक्तित्व के कार्यकलाप के बारे में अलग–अलग विवेचना देते हैं। विशेष रूप से, वे सचेतन और अचेतन कारकों कार्य में प्रतिबद्धता/स्वतंत्रत भूमिका/आनुवशिकी कारकों की भूमिका, अद्वितीयता/सर्वत्रता आदि की भूमिका के बारे में अलग–अलग व्याख्या करते हैं। पूर्व अनुभव की इस पाठ में आप व्यक्तित्व के चार प्रमुख सैद्धान्तिक परिदश्य के बारे में सीखेंगे। इनमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, क्षेत्र, मानवीयता तथा सामाजिक ज्ञानात्मक परिदश्य शामिल हैं।

टिप्पणी

18.2 मनोवैज्ञानिक विश्लेषण परिदृश्य

इसके प्रतिपादक सिगमण्ड फ्रायड हैं, यह सिद्धान्त एक व्यक्ति में अचेतन के प्रभाव, कामुक एवं आक्रमण मूलवत्ति तथा पूर्व बचपन के अनुभव के प्रभाव पर बल देता है। यह सिद्धान्त न केवल मनोविज्ञान में बल्कि साहित्यिक क्षेत्र, कला, साइकेट्री तथा फिल्मों के क्षेत्र में बहुत ही प्रभावशाली है। फ्रायड के अधिकांश विचार दिन प्रतिदिन के प्रयोग में बहुत ही उपयोगी साबित हुए हैं। फ्रायड ने अपने कैरियर की शुरूआत न्यूरोलॉजिस्ट के रूप में की। अपने सिद्धान्त का विकास उन्होंने अपने मरीज के परीक्षणों तथा स्वयं के विश्लेषणों के आधार पर किया है। उन्होंने अपने मरीजों को भूली जा चुकी याददाश्त को पुनः स्मरण करने के लिए निःशुल्क सहायता की है।

फ्रायूड ने इस बात की खोज की कि मस्तिष्क एक शैलचट्टान के समान है और हमारी सचेतन जागरूकता सीमित होती है।

फ्रायड मानते हैं कि मनोवैज्ञानिक शक्तियां जागरूकता के तीन स्तरों पर होती हैंः

सचेतन स्तरः विचार, अनुभव तथा संवेदनशीलता इनमें से एक हर क्षण मौजूद रहती है।

पूर्व सचेतन स्तरः यह सूचना एकत्रित करता है जिसमें से एक को मौजूदा जानकारी नहीं होती। बहरहाल, वे आसानी से सचेतन मस्तिष्क में प्रवेश कर सकते हैं।

अचेतन स्तरः इसके विचार, अनुभव, इच्छाएं, अर्न्तजोद आदि होते हैं जिसका हमें पता नहीं होता। बहरहाल, यह हमारी गतिविधि के सचेतन स्तर (लेवल) को प्रभावित करता है।

फ्रायड का मत है कि अचेतन सामग्री अक्सर प्रच्छन्न तरीके से चेतना स्तर में प्रविष्ट करता है। यह विकत तरीके में हो सकता है अथवा यह प्रतीकात्मक रूप में हो सकता है। सपने तथा मुक्त साहचर्य का अर्थ का प्रयोग जागरूकता के तीन स्तरों के विश्लेषण में किया जाता था।

व्यक्तित्व संरचना

फ्रायड का विश्वास है कि व्यक्तित्व का आविर्भाव हमारे आक्रामक प्रवत्ति तथा सुखद जैवकीय आवेग तथा आंतीकरण सामाजिक प्रतिबर्धा के बीच विवाद के कारण होता है। इस प्रकार, व्यक्तित्व उस स्थिति में उत्पन्न होता है जब हमारा प्रयास विवादों को सुलझाने का रहता है। अन्ततः वह तीन संरचनाएं प्रस्तुत करता है जो कि एक दूसरे से संबंधित होते हैंः इद, अहं (स्वाभिमान) और सुपर इगो (अत्यधिक स्वाभिमान)। आइए हम इन संरचनाओं के बारे में सीखेंः

इदः यह व्यक्तित्व का अचेतन, विवेकहीन भाग होता है। यह नैतिकता का प्रतिरक्षित हिस्सा है और बाहरी देश की मांग है। यह सुख सिद्धान्त पर कार्य करता है। यह शीघ्र सन्तुष्टि की कोशिश करता है।

अहं (इगो) स्वाभिमानः यह वास्तविक संसार के साथ विद्यमान रहता है। यह वास्तविकता के सिद्धान्त पर कार्य करता है। यह व्यक्तित्व का सचेतन तथा विवेकपूर्ण हिस्सा होता है जो कि विचारों तथा व्यवहारों को विनियमित करता है। यह व्यक्ति को बाहरी देश के सन्तुलित मांग तथा व्यक्ति की आवश्यकताओं के बारे में बताता है।

अत्यधिक अहंः यह पैतक तथा सामाजिक मूल्यों का आन्तरिक प्रतिनिधित्व करता है। यह सचेतन की आवाज के रूप में कार्य करता है जो कि न केवल वास्तविक बल्कि आदर्शवाद पर विचार के लिए दबाव डालता है। यह व्यक्तियों के व्यवहारों का सही अथवा गलत, अच्छा और खराब के रूप में बताता है। एक व्यक्ति में नैतिकता तथा आदर्शवाद के अभाव होने पर वह शर्म, दोषी, कुन्ठा, निकष्टता तथा चिन्ता महसूस करता है।

व्यक्तित्व विकास

मरीज के केस–हिस्ट्री के आधार पर, फ्रायड इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि व्यक्तित्व विकास मनोलैंगिक चरणों के क्रम में होता है। इन चरणों में सुख की मानसिकता का अनुभव शरीर के विभिन्न क्षेत्रों पर होता है। टेबल 18.1 इन चरणों (स्तरों) को दर्शाता है।

टेबल 18.1: *मनोलैंगिक अवस्था के विकास के चरण*

चरण	गतिवितध का संकेन्द्रण
मुखीय 6-18 माह	सकिंग तथा बाइटिंग आदि गतिविधियों से सुखद अनुभूति होती है।
गुदीय 18-36 माह	बोवेल तथा ब्लैडर के एलीमिनेशन पर सुखद अनुभूति
फालिक 4-6 वर्ष	सुखद अनुभूति केन्द्र जननांग है। जननांगों को छूना तथा फाण्डलिंग से सुखद अनुभव होता है।
सुसुप्ता अवस्था 7-11 वर्ष	बच्चे अपनी कामुकता इच्छाओं को दमित करते हैं तथा उन्हें सामाजिक रूप से स्वीकार्य गतिविधियों जैसे खेलों, कलाओं में परिवर्तित करते हैं।
जेनिटल	सुखद अनुभूति क्षेत्र जेनिटल है। इस आयु में कामुकता रुचि परिपक्व हो जाती है।

रक्षात्मक प्रतिक्रिया

अहं (इगो) इद की स्वाभाविक मांगों तथा अत्याधिक स्वाभिमान (सुपर इगो) के नैतिकता के बीच ताल–मेल बनाए रखने का कठिन कार्य करता है। ईगो समस्या को सुलझाने का प्रयास करता है और यदि वास्तविक समाधान अथवा समझौता संभव नहीं होता तो विचारों को तोड़ मरोड़कर सन्तुष्ट करना अथवा कतिपय प्रक्रियाओं के माध्यम से

टिप्पणी

वास्तविकता की अनुभूति को रक्षात्मक प्रतिक्रिया कहा जाता है। स्वयं की प्रतिरक्षा अथवा बचाव के लिए हम जिस तकनीक का प्रयोग करते हैं उसे रक्षात्मक प्रतिक्रिया कहते हैं। इन्हें समायोजन प्रतिक्रिया भी कहा जाता है। कुछ महत्वपूर्ण प्रतिक्रियाएं नीचे दी जा रही हैं:

प्रतिक्रिया	विवरण
प्रतिवाद	मौजूदा दुर्घटना/सूचना को याद न करा पाना अथवा उसकी जानकारी न होना जैसे मैं नहीं जानता, मैंने इसे नहीं देखा आदि।
विस्थापन	भावनात्मक प्रेरणाएं कुछ अन्य लोगों अर्थात् स्थानापन्न व्यक्ति/वस्तु को पुनः निर्देशित करती हैं।
आरोपण	स्वयं की गलतियों को दूसरे के ऊपर आरोपित करना है।
वास्तविकता (युक्तिकरण)	सामाजिक स्वीकार्यता स्पष्टीकरणों के माध्यम से हमारे कार्यों अथवा भावनाओं का युक्तीकरण करता है।
अवनति (रिग्रेशन)	पहले चरण के विकास के व्यवहारिक लक्षणों पर बल देता है।
रोकना (दमन करना)	सचेतना से चिन्ताग्रस्त विचारों, अनुभवों अथवा प्रेरणाओं का निष्कासन।
चरम (उत्कष्टता)	कामुक उत्तेजना (प्रवत्ति) को सकारात्मक कार्यों में व्यस्त करना।
प्रतिक्रिया निर्माण	ठीक विपरीत दिशा में कार्य करना। जैसे प्रेम को घणा में बदलना अथवा इसका उलटा।

फ्रायड के विचार विवादास्पद रहे हैं नियो फ्रायड के विचार अनेक विषयों पर फ्रायड के विचार से भिन्न हैं। कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तविदों, जो कि इस श्रेणी में शामिल रहे हैं, की सूची इस प्रकार है।

कार्ल जंगः सामूहिक अचेतना

जंग ने मानव जीवन में काम तथा आक्रामकता की मुख्य भूमिका का विरोध किया है। इसके अतिरिक्त उनका मानना है कि अत्यधिक सामान्य मनोवैज्ञानिकी ऊर्जा के द्वारा लोग प्रोत्साहित होते हैं। उन्होंने बताया कि व्यक्ति में सबसे महत्वपूर्ण भाग सामूहिक अचेतना होती है। यह हमारे परिवार तथा मानव जाति से प्रभावित होती है। सामूहिक अचेतना में आदिम किस्म के गुण विद्यमान होते हैं जो कि विशेष व्यक्ति में मानसिक प्रतिमा के रूप में होते हैं। अभिनेता, शक्तिशाली पिता, ईमानदार बच्चा, पालन पोषण करने वाली मां आदिम किस्म के उदाहरण हैं।

कारेन हॉर्नी: मूल चिंता

हॉर्नी ने व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक संबंधों की महत्ता पर बल दिया है। मूल चिंता की भावना अलग–अलग और असहाय बच्चों में दिखाई पड़ती है।

अल्फ्रेड एडलर: निकष्टता तथा उत्कष्ठता का अनुभव

एडलर का मत है कि मानव का मुख्य मकसद उत्कष्टता के लिए प्रयास करना है। यह निकष्टता के अनुभव से उत्पन्न होता है जो कि प्रारंभिक अवस्था तथा शैशव अवस्था के समय परिलक्षित होता है। इस अवधि के दौरान बच्चे असहाय होते हैं तथा दूसरे की सहायता और सहारे पर आश्रित रहते हैं।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक विचारों की आलोचना इस आधार पर की गई है कि इस सिद्धान्त के समर्थन के लिए अपर्याप्त सबूत हैं।

पाठगत प्रश्न 18.1

रिक्त स्थान में उपयुक्त शब्द भरें:

1. फ्रायड द्वारा मस्तिष्क की तुलना ..... की गई है।
2. मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सिद्धान्त में व्यक्तित्व की तीन संरचनाएं हैं जिनके नाम .. .. और ..... हैं
3. बच्चे अपने सैक्सुअल आवेश को ..... चरण के दौरान रोकते हैं।

18.3 शीलगुण सिद्धांत

शीलगुण, लाक्षणिक प्रवत्ति तथा सचेतना के प्रेरक होते हैं। वे अपेक्षाकत सही तरीके का बर्ताव करने के लिए स्थिर तथा सहनशील होते हैं। लोगों के वर्णन (प्रतिपादन) में शीलगुणों का प्रयोग बार–बार किया जाता है। शीलगुण सिद्धान्त का महत्वपूर्ण केंद्र बिंदु सामान्य होता है व्यक्तिगत लक्षणों की गणना सूची में शामिल होता है। वैयक्तिक पहचान का शीलगुण सिद्धान्त व्यक्तिगत विभिन्नता का वर्णन और मापन करता है। स्पष्ट गुणों को सतही गुण (अर्थात् प्रसन्न, विनम्र) कहा जाता है। इसके विपरीत कतिपय मूल गुण होते हैं। रेमण्ड कैट्टेल गुण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसमें 16 मूल गुण हैं। वे उन्हें व्यक्तित्व कारक कहते हैं। उनमें से कुछ हैं: आरक्षित– बहिर्गमन, गंभीर–प्रसन्नता, व्यवहारिक कल्पना: तथा आराम– तनावग्रस्तता।

आइसेन्क ने एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है जिसमें लोगों को चार किस्मों में वर्गीकत किया है: अन्तर्मुखी–न्यूरोटिक, अन्तर्ममुखी–स्थायित्व, बहिर्मुखी–न्यूरोटिक तथा बहिर्मुखी स्थायित्व।

इसके पश्चात आईसेन्क ने साइकोटिसिजम को व्यक्तित्व के दूसरे आयाम के रूप में प्रस्तुत किया।

हाल ही में मैक्रे तथा कोस्टा ने पांच फैक्टर मॉडल प्रस्तुत किया जिसमें न्यूरोटिजम, एक्स्ट्रा वर्जन, अनुभव के लिए खुली विचारधारा, सहमतिपूर्ण तथा कर्तव्यपरायणता। गुणों का प्रयोग व्यवहार का उल्लेख करने तथा पूर्वानुमान करने के लिए किया जाता है। बहरहाल, मानव व्यवहार गुणों तथा परिस्थितियों के बीच एक परिणाम है। अतः परिस्थितियों की प्रतिक्रिया में पारस्परिक क्रिया का स्थितियों का चुनाव और अनुकूलता शीलगुण के मूल को इंगित करता है। यह कहा जाता है कि शीलगुण सिद्धान्त व्यक्ति के व्यक्तित्व की व्याख्या नहीं करता। वे कुछ हद तक व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण को बतलाता है तथा गयात्मक प्रक्रियाओं की उपेक्षा करता है।

18.4 सामाजिक (ज्ञानात्मक अनुभूति बोधगम्यता) संज्ञानात्मक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अल्बर्ट बन्डूरा द्वारा किया गया। इनके विचार में व्यक्तियों तथा सामाजिक संदर्भ के बीच पारस्परिक क्रिया द्वारा व्यवहार प्रभावित होता है। उनका विचार है कि हमारी विचारधारा तथा कार्यवाहियाँ सामाजिक वातावरण में उत्पन्न होती है, परन्तु यह ध्यान देना आवश्यक है कि मानव जातियों में स्व–विनियमन की क्षमता होती है और सक्रिय संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में संलिप्त रहते हैं। उनकी पारस्परिक सम्बद्धता चित्र 18.1 में दर्शाया गया है।

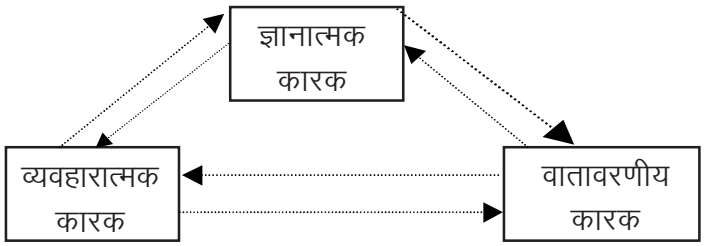

चित्र 18.1: *व्यवहारों, बौद्धिक तथा वातावरण की पारस्परिक प्रतिबद्धता*

बन्डूरा ने स्व–क्षमता की अवधारणा का विकास किया जिसमें व्यक्ति का संज्ञानात्मक बोध, योग्यताएं तथा व्यवहार शामिल हैं इनमें से एक स्व–प्रणाली के रूप में है।

स्व–क्षमता एक अवस्था को इंगित करता है जिनमें से एक योग्यताओं को स्वीकार करता है तथा विशेष परिस्थिति की मांगों को पूरा करने में प्रभावशाली होता है। यह सिद्धान्त प्रयोगशाला अनुसंधान पर आधारित है। बहरहाल, यह सिद्धान्त अचेतन कारकों की उपेक्षा करता है जिसे व्यवहार प्रभावित हो सकता है। यह सिद्धान्त जीवन के विवेकपूर्ण पहलू पर भी बल देता है जब भावनात्मक पहलू की उपेक्षा होती है।

संज्ञानात्मक सामाजिक सिद्धान्त व्यक्तित्व में विचारधारा तथा याददाश्त की भूमिका पर ध्यान केन्द्रित करता है। हम अक्सर पाते हैं कि लोगों की अपेक्षाएं और कुशलताएं व्यवहार के निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण होती हैं।

पाठगत प्रश्न 18.2

कालम ए में दिए गए नामों को कालम बी में दी गई अवधारणा के साथ मैच करें।

कालम ए	कालम बी
(ए) फ्रायड	(i) अन्तर्मुखी स्टेबल
(बी) यंग	(ii) क्रमबद्धता की आवश्यकता
(सी) आईसेन्क	(iii) उत्कष्टता
(डी) बन्डूरा	(iv) सामूहिक अचेतना
(ई) मास्लो	(v) स्व–क्षमता

18.5 मानवीयता सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों में यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर सक्रिय सर्जनात्मक शक्ति होती है उसे ''आत्म'' कहा जाता है यह शक्ति अभिव्यक्ति की जांच करता है। यह विकास और वद्धि करता है। इस अनुभूति को तीसरी शक्ति के रूप में भी जाना जाता है जो कि मानव संभाव्यता तथा लाक्षणिक प्रवत्ति, स्वजागरूकता तथा स्वतन्त्र इच्छा पर बल देता है। इसके विचार में मानव जाति जन्मजात अच्छा होता है। सचेतना तथा स्व विषयगत अनुभूति बहुत महत्वपूर्ण है। कार्ल रोजर्स और अब्राहम मास्लो मानवीय अनुभूति के मुख्य प्रस्तावक हैं।

अब्राहम मास्लो ने स्व–यथार्थवादी लोगों के विचार को प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि मानव उद्देश्य आवश्यकताओं के अनुक्रम में व्यवस्थित होती है। जैसा चित्र १८.२ में दर्शाया गया है कि स्व–अनुभवातीत के लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से मानव की आवश्यकताएं व्यवस्थित होती हैं।

मास्लो ने बताया कि स्व–यथार्थवादी लागों में, वास्तविकता की अनुभूमि अर्थात स्वैच्छिक, स्वयं तथा दूसरों को सहज स्वीकार्य, सजनात्मक तथा जीवन के सकारात्मक पहलू आनन्द और सराहना विद्यमान होती हैं जैसे निजी व्यवहार और आत्मनिर्भरता

कार्ल रोजर्स का मानना है कि मानव की मूल मंशा यथार्थवादी प्रवत्ति है। यह मानव शरीर का अनुरक्षण तथा विकास करता है। रोजर का मानना है कि व्यक्ति अपनी स्वयं की विचारधारा के अनुसार कार्य करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। वे अनुभवों का खण्डन

करते हैं जो कि अपनी स्व–अवधारणा के प्रतिकूल होते हैं। विकास के लिए आदर्श परिस्थिति बिना शर्त सकारात्मक संबंध रखना है। व्यक्ति के पूर्णतः कार्यशील के संबंध में उनकी धारणा है कि स्व–अवधारणा लचीला तथा विकासात्मक है। यह मानव जाति के आशावादी विचार को प्रतिपादित करता है।

चित्र 18.2: *मास्लो की आवश्यकताओं का अनुक्रम*

18.6 गुणों की अवधारणा

व्यक्तित्व के लिए भारतीय दष्टिकोण तीन गुणों के सम्मिश्रण पर बल देता है जिनके नाम सत्व, राजस, तथा तमस। इन गुनाज को सामख्या सिद्धान्त में विस्तत रूप से विचार किया गया है। इन गुनों के कारण को भगवतगीता में स्पष्ट किया गया है। ये गुन विभिन्न स्तरों में तथा किसी भी समय विद्यमान रहते हैं। एक व्यक्ति का व्यवहार गुन पर निर्भर करता है जो कि किसी भी समय व्यक्ति को ऊपर उठा सकता है। इन गुनों के बारे में सारांश नीचे दिया गया है।

सत्व गुणः मुख्य विशेषताएं जो कि सत्व गुण को प्रतिपादित करती हैं वह सत्य, गंभीरता, कर्तव्य, अनुशासन, अनाशक्ति, स्वच्छता, मानसिक सन्तुलन, संवेदना का नियन्त्रण, प्रतिबद्धता तथा कुशाग्र बुद्धि है।

राजस गुणः राजस गुण वाले व्यक्ति की विशेषताओं में प्रभावशाली क्रियाकलाप, संवेदना के तुष्टिकरण की इच्छा, असन्तुष्टता, ईर्ष्या तथा मौतिकवादी विचारधारा शामिल है।

तमस गुणः इनमें क्रोध, अहंकार, मानसिक असन्तुलन, उदासी, आलस्य (सुस्ती), लिम्बकारी तथा असहाय का अनुभव शामिल है। भगवतगीता में आदिप्ररूप (मेटाटाइपकल) में तीन गुण पाये जाते हैं जो कि हमारे खाने में, मानसिकता (बुद्धि), चैरिटी दान आदि की गुणों अथवा विशेषताओं के तीन प्रकारों में वर्गीकत किया जा सकता है।

18.7 मानव व्यक्तित्व का मूल्यांकन

इस तथ्य के विचार में व्यक्तित्व के बारे में ज्ञान का प्रयोग अनेक अनुसंधानकर्ताओं द्वारा उसके मूल्यांकन के लिए अनेक उपस्करों को विकसित करने में किया जाता है। इन

उपस्करों को तीन किस्मों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है जो कि नामतः पर्यवेक्षणात्मक, स्व–रिपोर्ट तथा प्रोजेक्टिव हैं।

पर्यवेक्षणात्मक उपस्कर का प्रयोग साक्षात्कार, एक या अनेक परिस्थितियों में व्यक्तियों की रेटिंग में किया जाता है।

प्रोजेक्टिव परीक्षण एक विशेष प्रकार का परीक्षण होता है जिसमें अनेकार्य सामग्री का प्रयोग किया जाता है और जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व का परीक्षण किया जा रहा है वह अपने अथवा उसके विचारों को प्रकट करता है। दो प्रसिद्ध थीमेटिक एप्रीसेप्शन टेस्ट (टी.ए.टी.) हैं। इंकब्लोट टेस्ट में एक व्यक्ति 1. सिमेट्रीकल इंकब्लोट को दर्शाता है और उससे यह बताने के लिए कहा जाता है कि वह उन सभी में क्या देखता है। उसके द्वारा दिए गए जबाव का मनोवैज्ञानिक व्याख्या करता है। टी.ए.टी. में कुछ फोटोग्राफ दिखाये जाते हैं और वह व्यक्ति अपने पूर्व के, वर्तमान तथा भविष्य की स्थिति के संबंध में कहानी बताता है। व्यक्ति द्वारा बताई गयी कहानी का मनोवैज्ञानिक द्वारा कोड किया जाता है और उसका विश्लेषण किया जाता है ।

यह नोट किया गया है कि व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए विभिन्न व्यक्तित्व परीक्षा का प्रयोग और व्याख्या आवश्यक है।

पाठगत प्रश्न 18.3

बताएं कि क्या निम्नलिखित कथन सत्य हैं अथवा असत्यः

1. मौजूदा दुःखद घटना संबंधी सूचना के ज्ञान के लिए प्रोजेक्शन असफल रहता है। सत्य/असत्य
2. सजनात्मक गैर कामुक क्रियाकलापों में कामुक उत्तेजना को मिला लेना ही उत्कष्टता है। सत्य/असत्य
3. राजर्स ने स्व–क्षमता की अवधारणा का प्रतिपादन किया है। सत्य/असत्य
4. मानवीय अनुभूति को मनोवैज्ञान में तीसरी शक्ति भी कहा जाता है। सत्य/असत्य

18.8 व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारक

सामाजिक सांस्कतिक परिवेश में व्यक्तित्व का विकास व्यक्तिगत रूप में होता है। एक विशेष संभाव्यता जिसमें बच्चे का जन्म होता है और विकसित होता है अथवा विकास रूक जाता है। यह व्यक्ति के परिपक्वता की स्थिति तथा उसके द्वारा अर्जित किए गए अनुभव के प्रकार पर निर्भर करता है। वद्धि एवं विकास की प्रक्रिया में लोगों में अच्छे गुणों का विकास होता है जो कि व्यक्तियों में विभिन्नता पैदा करता है। इस तरह से यह पता

चलता है कि व्यक्तित्व का निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है जो कि एक तरह से व्यक्ति के सामान्य तथा उत्कष्ट अनुभवों पर और दूसरी तरह अनुवांशिक कारकों पर निर्भर करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह एक स्थाई तरीका है जिसमें विचारक की विशेष पद्धति, अनुभव तथा व्यवहार की विशेष स्थिति उत्पन्न होती है।

1. **आनुवांशिक कारक:** अधिकांशतः सभी सिद्धान्तविदों का मत है कि व्यक्तित्व के निर्धारण में आनुवांशिकता की प्रमुख भूमिका होती है। जैसे फ्रायड के विचार में व्यक्तित्व विशुद्ध रूप से जैवकीय है। बहरहाल, सामाजिक तथा सांस्कतिक के मूल्य को दूसरे पहचान करते हैं। वास्तव में, दोनों में से एक अथवा दोनों तरीके से इस प्रश्न पर विचार करना गलत होगा और आनुवांशिकी अथवा वातावारण पर अधिक जोर दिया गया है। आनुवांशिक व्यवहार का अध्ययन बताता है कि अधिकतर व्यक्तित्व पर आनुवांशिक गुणो का 15 से 50 प्रतिशत तक प्रभाव पड़ता है।

2. **पूर्व अनुभव:** व्यक्तित्व पर विचार व्यक्त करने वाले अधिकांश सिद्धान्तविदों का मत है कि व्यक्तित्व का विकास एक सतत प्रक्रिया है। आरंभिक वर्षों में खेलना व्यक्तित्व को निखारने में अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बहरहाल, आस–पास का परिवेश तथा अनुभव भी व्यक्तित्व के विकास में अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

3. **प्राथमिक समूह:** व्यक्तित्व के विकास की व्याख्या करते समय परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार के सदस्यों के साथ जल्दी संबंध जोड़ना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। फ्रायड का मत है कि वयस्कता के दौरान बहुत सी समस्याएं गलत ढंग से पालन–पोषण के कारण उत्पन्न होती हैं जो कि भावनात्मक अड़चनें हो जाती हैं। पहचान करने की संवेदना तथा उपयुक्त मॉडलिंग की प्रासंगिकता पर बल दिया गया है।

4. **संस्कति:** एक संस्कति में रहने वाले लोग अक्सर समान प्रवत्ति के होते हैं। संस्कति द्वारा स्वीकार्य पद्धति के अन्तर्गत बच्चा व्यवहार को सीखता है। उदाहरणार्थ लड़कों तथा लड़कियों में व्यक्तित्व के लक्षण अलग–अलग दिखाई देते हैं। विभिन्न व्यावसायिक कार्य भी संस्कति द्वारा तैयार किए जाते हैं। बहरहाल, उस संस्कति में रहने वाले प्रत्येक बच्चे पर संस्कति के प्रभाव में समरूपता नहीं हो सकती क्योंकि वे विभिन्न तरीकों तथा व्यक्तियों के माध्यम से संचारित होती हैं और लोगों में उत्कष्ट अनुभव भी होते हैं।

पाठगत प्रश्न 18.4

1. भारतीय दष्टिकोण में व्यक्तित्व के उल्लिखित गुणों के नाम बताएं।
2. व्यक्तित्व के मूल्यांकन की तीन श्रेणियों के नाम बताएं।
3. व्यक्तित्व के दो महत्वपूर्ण प्रोजेक्टिव परीक्षणों के नाम बताएं।
4. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कौन से कारक हैं?

पाठांत प्रश्न

1. व्यक्तित्व की अवधारणा का उल्लेख करें।
2. व्यक्तित्व के समझने के लिए चार मुख्य अनुभूतियां कौन सी हैं?
3. सचेतन तथा पूर्व सचेतन मस्तिष्क के बीच क्या अन्तर है?
4. मनोलैंगिक विकास के विभिन्न चरणों के नाम बताएं।
5. श्रेणीबद्धता की आवश्यकता का क्या अर्थ है? इन आवश्यकताओं की सूची तैयार करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

18.1

1. आइसबर्ग 2. इड, इगो, सुपर ईगो 3. अन्तर्हित (लैटैन्सी)

18.2

कालम ए	कालम बी
(ए)	(iii)
(बी)	(iv)
(सी)	(i)
(डी)	(v)
(ई)	(ii)

18.3 1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य

18.4 1. सत्व, राजस, तामस 2. (ए) पर्यवेक्षात्मक (बी) स्व रिपोर्ट (सी) प्रोजेक्टिव 3. इंकब्लाट; टी. ए. टी. 4. आनुवांशिक कारक, पूर्व अनुभव; प्राइमरी ग्रुप, संस्कति

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. अनुच्छेद 18.1 को देखें
2. अनुच्छेद 18.2, 18.3, 18.4 तथा 18.5 को देखें
3. अनुच्छेद 18.2 को देखें
4. अनुच्छेद 18.2 को देखें
5 अनुच्छेद 18.5 को देखें

19

व्यक्तित्व का मूल्यांकन

पिछले पाठ में आपने व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धांतों के बारे में पढ़ा है। ये थे मनोविश्लेषक, गुणात्मक, सामाजिक–संज्ञानात्मक, मानवतावादी और भारतीय दष्टिकोण, गुणाधारित। यदि हम किसी एक विशेष सिद्धांत पर आधारित किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विशिष्ट पक्षों को निश्चित करना चाहते हैं, तो उन्हें मापने के लिए विशिष्ट तकनीकें हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप किसी व्यक्ति में प्रभावी गुणों को जानना चाहते हैं जैसे क्या वह बहिर्मुखी या अंतर्मुखी है, तो इस जानकारी को पाने के लिए विशेष मनोवैज्ञानिक विधियाँ विकसित की गई हैं। इसी प्रकार यदि हम किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के अचेतन पक्ष को जानना चाहें तो उसे मापने के लिए हमें मनोविश्लेषक विधि का प्रयोग करना होगा। इस पाठ में आप व्यक्तित्व को मापने की विभिन्न विधियों के बारे में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप समर्थ होंगे :

- विभिन्न सैद्धांतिक तरीकों पर आधारित व्यक्तित्व का मापन करने में।

19.1 व्यक्तित्व के विशेषकों का मूल्यांकन

व्यक्तित्व के विशेषकों को मापने के दो तरीके हैं। एक तरीके में कुछ प्रश्न पूछे जाते हैं जिनके उत्तर में व्यक्ति को अपने विचारों, भावनाओं और कार्यों के बारे में बताना होता है। इस उद्देश्य के लिए एक व्यक्तित्व मापनी का प्रयोग किया जाता है। दूसरे तरीके में कोई दूसरा व्यक्ति किसी व्यक्ति के विशेषकों का मापन करता है जो उस व्यक्ति के बारे में पूर्व ज्ञान या प्रत्यक्ष प्रेक्षण पर आधारित होता है। इसे रेटिंग–स्केल विधि कहते हैं।

टिप्पणी

व्यक्तित्व मापनी प्रश्नावलियाँ हैं वहाँ विभिन्न परिस्थितियों में अपनी प्रतिक्रिया के बारे में विभिन्न प्रश्नों के उत्तर देने होते हैं। एक व्यक्तित्व मापनी की ऐसी रूपरेखा बनाई जा सकती है जो एक ही विशेषक जैसे बहिर्दर्शन, अंतर्दर्शन या अनेक विशेषकों की माप कर सकती है। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति इस प्रश्न, "क्या आप सामाजिक परिस्थितियों में पार्श्व में रहते हैं" यह अंतर्दर्शन का संकेत है। वास्तव में, मापन विभिन्न परिस्थितियों से संबंधित अनेक प्रश्नों पर आधारित होगा, न कि केवल एक प्रश्न पर। सोलह कारक व्यक्तित्व प्रश्नावली (The sixteen factor personality questionnaire) (16PF) और मिनीसोटा बहुआयामी व्यक्तित्व मापनी ¼Minnesota multiphasic personality inventory (MMPI) ये दो बहुत प्रसिद्ध मापिनी हैं जो व्यक्ति के विशेषकों के बारे में जानकारी प्राप्त करने में उपयोगी हैं।

मापिनी बहुत उपयोगी होती है, किंतु जब व्यक्ति अपनी प्रतिक्रियाओं के बारे में बताता है, कभी–कभी वह अपनी स्वयं की विशेषताओं के बारे में आग्रही हो जाता है। इस समस्या से निपटने के लिए व्यक्तित्व के विशेषकों के मूल्यांकन के लिए निर्धारण मापनी पर आधारित दूसरे तरीके का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति को दूसरे के आत्म–विश्वास के स्तर का वर्णन प्वाइंट स्केल के प्रयोग से न्यूनतम (1)* से अधिकतम (7)* करने को कहा जा सकता है।

निर्धारण के उपयोगी एवं वैध होने के लिए निर्धारक के लिए कुछ शर्तें हैं जिनका उसे पालन करना चाहिए। निर्धारकों को (क) मापनी को समझने योग्य होना चाहिए (ख) उस व्यक्ति को जिसके लिये मापनी तैयार करनी है, अच्छी तरह से जानना और (ग) अपने निर्णयों में व्यक्ति के प्रति पक्ष या विपक्ष में पक्षपात न करना, होना चाहिए।

19.2 मनोविश्लेषक दष्टिकोण में मूल्यांकन

आप को पिछले पाठ से याद आयेगा, मनोविश्लेषक दष्टिकोण व्यक्ति के अचेतन अंतर्द्वंद्वों एवं अभिप्रेरणों पर बल देता है। किंतु व्यक्ति के व्यक्तित्व का अचेतन भाग (इस विचार में मुख भाग) आत्म सजगता से छुपा होता है। इसलिए मनोविश्लेषक को उसकी अप्रत्यक्ष सांकेतिक सूचना का प्रयोग करना पड़ता है। और अचेतन अंतर्द्वंद्वों और अभिप्रेरकों के रहस्य को खोलने के लिए व्याख्या करनी पड़ती है।

इस विधि में, यदि मनोविश्लेषक किसी व्यक्ति के अचेतन मन की प्रक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है तो वह अनेकार्थक सामग्री प्रस्तुत करता है और व्यक्ति से कहता है कि जो दिखाई दे रहा है उसका वर्णन करो। यह अनेकार्थक सामग्री इंक–ब्लाट या कोई चित्र हो सकता है जिसे व्यक्ति अपने अनुभव या कल्पना के आधार पर पढ़ता है या अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार व्यक्ति के अचेतन मन को टेप कर लिया जाता है और उसके बारे में कुछ रहस्य खोला जाता है। 'रोशा टेस्ट' और 'थिमेटिक एपर्शेप्शन टेस्ट (टी.ए.टी.) दो प्रसिद्ध प्रक्षेपक परीक्षण हैं। पहला इंकब्लाट पर तथा दूसरा मानव–चित्रों पर आधारित है। उदाहरण के लिए एक टी.ए.टी चित्र किसी बच्चे की पीठ की तरह का हो सकता है, जो सूर्य की तरफ देख रहा है। यह पूछने पर कि बच्चा क्या

देखता है, कोई व्यक्ति कह सकता है "बच्चा सोच रहा है कि वह जीवन में बहुत कुछ प्राप्त करेगा। इस प्रकार व्यक्ति ने स्वयं के जीवन में बड़ी चीजें प्राप्त करने की बात को प्रक्षेपित कर सकता है।

पाठगत प्रश्न 19.1

उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थान भरिये :

1. ———————————— में एक व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में अपनी प्रतिक्रिया के संबंध में अनेक प्रश्नों के उत्तर देने हैं।
2. पूर्व ज्ञान पर आधारित किसी व्यक्ति के विशेषकों के वर्णन को ———————— विधि कहते हैं।
3. ———————————— सांकेतिक अर्थों का प्रयोग करता है मनोविश्लेषक द्वारा इसकी व्याख्या अचेतन अंतर्द्वंद्वों के रहस्य खोलने के लिए की जाती है।
4. ———————————— परीक्षण में मानव आकतियाँ शामिल होती हैं जिसके बारे में व्यक्ति को एक संक्षिप्त कहानी बतानी पड़ती है।

19.3 मानवतावादी परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन

आपने पिछले पाठ में पढ़ा है कि व्यक्तित्व को मानवतावादी उपागम का ध्यान व्यक्ति के अपने संसार के अनुभव पर केंद्रित है। इसलिए यहाँ मूल्यांकन का संबंध व्यक्ति की अपने जीवन की परिस्थितियों और अनुभवों के बारे में प्रत्यक्षीकरण को समझने से है। व्यक्ति के आत्म संप्रत्यय को मापने के बहुत सी विधियाँ विकसित की गई हैं। एक उपागम उस व्यक्ति पर आधारित होता है जो बहुत से वर्णनात्मक वाक्यों में ऐसे वाक्यों को चुनता है जो उसका बहुत सही ढंग से वर्णन करते हैं। "मैं एक आत्मविश्वासी व्यक्ति हूँ", "मैं अक्सर आशंकित होता हूँ", "मैं एक निष्कपट और परिश्रमी छात्र हूँ" आदि। दूसरा उपागम उस व्यक्ति पर ध्यान देता है जो अपने आंतरिक स्वभाव या आत्म को दूसरों पर व्यक्त करने को इच्छुक रहता है। यह उपागम इस समझ पर आधारित है कि आत्म–प्रकटीकरण के अधिक उच्च या अधिक निम्नस्तर दोनों ही सांवेगिक अपरिपक्वता की ओर संकेत करते हैं।

19.4 गुणों का मूल्यांकन

पिछले पाठ में आपने व्यक्तित्व के बारे में भारतीय उपागम के बारे में भी पढ़ा जो तीन गुणों पर बल देता है : सत्व, रज और तम। इस धारणा पर आधारित व्यक्ति के स्वभाव का मूल्यांकन करने के लिए हमें यह समझने की आवश्यकता है कि कौन सा गुण कम प्रभावी है और अंततः बहुत कम है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति जो अत्याधिक सत्यनिष्ठ, विरक्त, और सहयोगी है वह सत्व प्रधान है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में कौन से गुण प्रबल हैं का मूल्यांकन करने के लिए प्रश्नावली, प्रेक्षण आदि का प्रयोग करके

हमें सम्मिलित सूचना प्राप्त करनी होगी। कुछ ऐसी मापनी विकसित की गई है जो हमें यह जानकारी देती हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में कौन से गुण क्रियाशील हैं।

पाठगत प्रश्न 19.2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए :

1. ———————— उपागम में मूल्यांकन व्यक्ति के अपने संसार में कैसे प्रत्यक्ष करता है, पर बल दिया जाता है।
2. एक व्यक्ति अपने आंतरिक स्वभाव या आत्म को दूसरों के सामने व्यक्त करने की इच्छा को ———————— की प्रवत्ति कहते हैं।
3. भारतीय गुणों के मूल्यांकन का उपागम व्यक्ति के व्यक्तित्व में कौन सा गुण ———————— है, जानने का प्रयास करता है।
4. ———————— विधि जो विशेषक उपागम में प्रयोग होता है गुणों के परिप्रेक्ष्य में भी प्रयोग किया जाता है।

आपने क्या सीखा

- व्यक्तित्व मूल्यांकन व्यक्तित्व के सिद्धांत से संबंधित है जिसके द्वारा हम व्यक्ति को समझना चाहते हैं।
- मूल्यांकन का विशेषक उपागम व्यक्तित्व मापनी और निर्धारण मापनी का प्रयोग करता है।
- मूल्यांकन का मनोविश्लेषक उपागम प्रक्षेपक तकनीक का प्रयोग करता है जिसमें व्यक्ति अनेकार्थक सामग्री जैसे इंक ब्लाट का प्रयोग किया जाता है।
- व्यक्तित्व मूल्यांकन का मानवतावादी उपागम यह पता लगाने का प्रयास करता है कि व्यक्ति अपने संसार का प्रत्यक्ष कैसे करता है।
- मूल्यांकन का गुण उपागम बहुविध तरीकों पर विश्वास करता है जिसमें मापनी (विस्तत सूची) आती है।

पाठांत अभ्यास

संक्षेप में लिखिये कि व्यक्तित्व मूल्यांकन निम्नांकित उपागमों में कैसे किया जाता है :

1. विशेषक उपागम
2. मनोविश्लेषक उपागम
3. मानवतावादी उपागम
4. गुण उपागम

20

मनोवैज्ञानिक विकार

प्रसन्नता अनुभव करना या मनोव्यथा में रोना, सामान्य क्रियायें हैं जो कभी न कभी हम सभी करते हैं। अधिकांश समय हम वही करते हैं जो परिस्थिति की मांग होती है, अर्थात् हम अपने संवेगों और व्यवहार को समाज में प्रचलित मापदंडों के अनुरूप नियंत्रित करते हैं। परंतु यदि व्यवहार बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के या संदर्भ के विरुद्ध होता है तो आप उसका मूल्यांकन कैसे करेंगे? यह सामान्य व्यवहार नहीं कहा जायेगा। दूसरे शब्दों में यह असामान्य व्यवहार कहा जायेगा। परंतु जीवन में किसी समय हममें से बहुत लोग अतार्किक रूप से या असामान्य व्यवहार करते हैं। क्या इसका मतलब यह है कि हम असामान्य हो गये हैं? संभवतः नहीं।

इसलिए असामान्य व्यवहार की क्या परिभाषा है, वे कौन से कारक हैं जो असामान्य व्यवहार पैदा करते हैं, ऐसे ही अनेक प्रश्न हमारे मन में उत्पन्न होते हैं। इस पाठ में ऐसे ही प्रश्नों के उत्तर और व्याख्या देने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे :

- मनोवैज्ञानिक विकार की व्याख्या करने में।
- असामान्यता के प्रमुख प्रकार सूचीबद्ध और व्याख्या करने में।
- चिंता, कायिक रूप, मनःस्थिति, मनोविदलन जैसे मनोवैज्ञानिक विकारों के लक्षणों और विभिन्न प्रकारों का वर्णन करने में।

20.1 मनोवैज्ञानिक विकार

शब्द से ही स्पष्ट है कि कोई भी विकार जो व्यक्ति को सामाजिक क्षेत्र में अप्रभावी ढंग से कार्य के लिए प्रस्तुत करता है, मनोवैज्ञानिक विकार के रूप में जाना जाता है। मनोवैज्ञानिक विकारों को व्यवहारात्मक या मनोवैज्ञानिक लक्षणों की प्रतिकति के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो अत्यधिक पीड़ा पैदा करते हैं और कार्य करने की योग्यता को जीवन के एक या अनेक क्षेत्रों में दूषित कर देते हैं। महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जो लक्षण व्यक्ति प्रदर्शित करता है निश्चित रूप से प्रचलित सामाजिक और सांस्कतिक मानदण्डों से गंभीर विचलन दर्शाते हैं। यहाँ पर सामाजिक और सांस्कतिक मानकों पर इसलिए बल दिया जा रहा है क्योंकि प्रत्येक संस्कति एक दूसरे से भिन्न होती है। एक संस्कति में कुछ कार्य उसका अनिवार्य भाग होते हैं जो दूसरी संस्कति में गंभीर व्यवधान हो सकते हैं। उदाहरण के लिए जनजातीय समाज में बिलकुल भिन्न मानदण्ड और संस्कति होती है। उनका रहन सहन और आदतें *नगरीय* संदर्भ में असामान्य मानी जायेंगी।

सामान्य से विलग व्यवहार को निश्चित करने के निम्नांकित सात मापदण्ड माने जाते हैं:

1. पीड़ा की अनुभूति : अपने जीवन में अत्यधिक पीड़ा और असुविधा अनुभव करना।
2. कुअनुकूलनशीलता : ऐसी व्यवहार या विचार प्रतिकति जो जीवन को अधिक दुष्कर बना देती है।
3. अतार्किकता : दूसरों के साथ तार्किक ढंग से बातचीत करने में असमर्थता
4. अनिश्चितता : पूर्णतः अनापेक्षित ढंग से कार्य करना
5. स्पष्टता और गहनता : दूसरों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और गहन रूप से संवेदना अनुभव करना।
6. प्रेक्षक की असुविधा : ऐसे ढंग से व्यवहार करना जो दूसरों के लिए उलझन पैदा करता है।
7. नैतिक और आदर्श मानकों का उल्लंघन : आदतन मानदण्डों को तोड़ना।

जैसा कि हमने पहले पढ़ा है कि असामान्यता और सामान्यता बड़े रूढ़ संप्रत्यय नहीं हैं। मन की अवस्थाओं की तरह, वे निरंतरता में रहते हैं और हममें से बहुत लोग जीवन के विभिन्न चरणों में उनका अनुभव करते हैं।

यह कहा जा सकता है कि असामान्यता मात्रा का विषय है जिसमें एक व्यक्ति का व्यवहार समाज के मान्य मापदण्डों के विपरीत अनुचित माना जाता है और जो व्यक्ति के सामाजिक कार्य करने में और समायोजन में समस्या पैदा करते हैं। आइये अब हम असामान्य व्यवहार के कारणों का अध्ययन करें।

20.2 असामान्य व्यवहार के कारण

बहुत से कारक हैं जो असामान्य व्यवहार के कारणों में योगदान करते हैं। उनमें से कुछ हैं:

क. जैविक कारक : व्यवहार को प्रभावित करने वाले जैविक कारणों के अंतर्गत अनुवांशिक कारक, गुणसूत्रों की अक्रिया, मस्तिष्क या अंतःस्रावी ग्रंथियों की अक्रिया जो असामान्य व्यवहार का कारण बनते हैं।

ख. मनोवैज्ञानिक कारक : असामान्य व्यवहार उत्पन्न करने वाले मनोवैज्ञानिक कारकों को पहचानना और मापना कठिन है क्योंकि वे अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करते हैं। इनका प्रभाव संदिग्ध रहता है किंतु यदि कोई बचपन में अपनाई गई प्रक्रियाओं का विश्लेषण करे जैसे अति–सुरक्षा, अतिभोज, असंगत दण्ड एवं पुरस्कार, ये कारक महत्वपूर्ण ढंग से कुअनुकूलनशील व्यवहार के विकास में योगदान करते हैं।

पाठगत प्रश्न 20.1

क. असामान्य व्यवहार के एक तत्व के रूप में अतार्किकता की व्याख्या कीजिए।

_____

_____

ख. असामान्य व्यवहार के क्या कारण हैं?

_____

_____

20.3 विकारों के प्रकार

अब तक इस पाठ में हमने असामान्य व्यवहार और उसके कारणों के बारे में पढ़ा है। आइये अब कुछ मनोवैज्ञानिक विकारों के बारे में विस्तार से पढ़ें। कुछ मुख्य मनोवैज्ञानिक विकार निम्नांकित हैं–

1. चिंता विकार
2. मनोदशा विकार
3. मनोविदलन विकार
4. द्रव्यसंबंधी विकार

20.3.1 चिंता विकार

हम में से सभी ने जीवन में चिंता का किसी न किसी रूप में अनुभव किया है। चाहे वह परीक्षाकाल के मध्य हो या साक्षात्कार के परिणाम की प्रतीक्षा हो, या प्रियजन की मत्यु के कारण हो, हम चिंता अनुभव करते हैं। हम इससे अपने ढंग से सुलझाने का प्रयास भी करते हैं, किंतु यदि समय के अंदर उचित ढंग से उसका समाधान नहीं होता तो वह विकार का रूप ले सकती है। चिंता विकार वे विकार हैं जो व्यक्ति के कार्य निष्पादन या सामाजिक कार्यों में अतिचिंता के कारण कमी ला देते हैं। चिंता विकार अनेक प्रकार के हो सकते हैं। जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

1. सामान्यीकत चिंता विकार
2. आतंकित विकार
3. (फोबिया) दुर्भीति
4. मनोग्रस्तात्मक – बाध्य विकार
5. कायजन्य चिंता
6. अभिधातोत्तर तनाव

आइये हम इन विकारों की विशेषताओं पर दष्टिपात करें :

1. **सामान्यीकत विकार :** यह अति सामान्य प्रकार का चिंता विकार है। अयथार्थ या अधिक चिंता इस विकार का मुख्य लक्षण है। आशंका, चक्कर आना, पसीना आना, कंपन, खिंचाव, एकाग्रता में कठिनाई आदि इस विकार के अनेक लक्षण हैं।

2. **आतंकित विकार :** बढ़ी हुई धड़कन, सांस लेने में कठिनाई और असहाय होने का भाव आदि स्पष्ट शरीर क्रियात्मक लक्षणों के साथ गहन चिंता आतंक विकार के मामले में देखे जाते हैं। चिंता के पहले और चिंता समाप्त होने के बाद शांति छा जाती है। इस विकार से पीड़ित व्यक्ति हमेशा चिंतित नहीं रह सकता।

3. **(फोबिया) दुर्भीतिः** दुर्भीति किसी वस्तु या परिस्थिति का अतार्किक भय है। हम सभी को किसी न किसी वस्तु से भय होता है किंतु जब यह भय एक ऐसे स्तर पर पहुँच जाता है यहाँ यह सामान्य क्रियाकलाप को बाधित कर देता है तब इसको दुर्भीति (फोबिया) कहते हैं। सामाजिक भय एक प्रकार की दुर्भीति मानी जाती है – जब कोई मंच पर भाषण देने या अजनबी से बात करने से डरे और कुछ विशिष्ट प्रकार के दुर्भीति जैसे चूहे या बिल्ली का डर।

4. **मनोग्रस्तात्मक - बाध्यविकार :** आग्रही विचार या इच्छायें जो किसी की चेतना में अनजाने ही प्रवेश कर जाते हैं और रोके नहीं जा पाते मनोग्रस्ति कहे जाते हैं। बाध्यता एक क्रिया है जिसे व्यक्ति करते रहने को बाध्य अनुभव करता है यह जानते

हुये भी कि वह अनावश्यक है। आग्रही चिंतन अनेक बार बाध्य क्रियाओं की ओर ले जाता है।

5. **कायजन्य चिंता :** कायजन्य चिंता शारीरिक समस्याओं की ओर संकेत करती है जिनका कोई आंगिक आधार नहीं होता, उदाहरण के लिए थकान, सिरदर्द अस्पष्ट शरीर पीड़ा आदि। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति लक्षणों में ही ग्रसित रहते हैं।

पाठगत प्रश्न 20.2

1. चिंता विकार क्या है?

   ____

2. किन्हीं दो चिंता विकारों को सूचीबद्ध कीजिए।

   ____

20.3.2 मनोदशा विकार

मनोदशा विकार संवेगों के विकार हैं। संवेग की बढ़ी हुई तीव्रता और अवधि को तुरंत मनोवैज्ञानिक और चिकित्सकीय ध्यान की आवश्यकता है। इस विकार से पीड़ित व्यक्ति को सांवेगिक अशांत व्यक्ति कहते हैं। तीन प्रकार के मनोदशा विकार चरित्रांकित किये गये हैं। जैसे अवसादी विकार, द्विध्रुवीय विकार और अन्य विकार। मनोदशा विकार के अंतर्गत अत्यंत कष्टदायक लक्षण जैसे असंतोष और चिंता, भूख में परिवर्तन, निद्रा में विघ्न, मनोप्रेरक कार्य, अचानक वजन घटना, स्पष्ट सोचने में असमर्थता और मत्यु और आत्महत्या का विचार।

कुछ विचारों में जैविक कारक सम्मिलित होते हैं। भेषज चिकित्सा और जैव चिकित्सा इसके लिए अति प्रभावी पाई गई है।

20.3.3 द्रव्य संबंधी विकार

ऐसा पाया गया है कि जब लोग अधिक समय तक दर्द और तनाव से पीड़ित रहते हैं तो नशे जैसे शराब का सहारा लेते हैं। नशा, जैसे शराब, हमारे विचारों, कार्यों और क्रिया कलापों को नकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है। ये नशीले पदार्थ लंबे समय तक लिये जाने के कारण अवधान, अभिप्रेरण और गत्यात्मक–समन्वय में गिरावट आ जाती है। नशीले पदार्थों के सेवन से लोग व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में बहुत कुछ खोते हैं। द्रव्य संबंधी विकार केवल शराब के सेवन तक ही नहीं सीमित है किंतु यह पान मसाला, तम्बाकू, अफीम, मारीजुआना आदि से भी संबंधित हैं। इस विकार से पीड़ित व्यक्ति की सहायता के लिए निम्नांकित बातें आवश्यक हैं:

1. निर्विषीकरण
2. पीछे हटने के लक्षणों को सरल बनाने के लिए भेषज प्रयोग
3. प्रतिकूल अनुकूलन
4. सामाजिक सहायता
5. मनोचिकित्सा
6. पुनर्वास
7. रोकथाम और अनुसरण करना

20.3.4 मनोविदलन विकार

विशेषज्ञों का मानना है कि मनोविदलन सर्वाधिक विनाशक मानसिक विकार है। इसको विकारों के समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसको मूलभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं जैसे अवधान, प्रत्यक्षीकरण, विचार, संवेग और व्यवहार के विखंडन द्वारा चित्रांकित किया जा सकता है। यह विखंडन गंभीर कुसमंजन की ओर ले जाता है। मनोविदलन का रोगी अपने आस–पास घटने वाली घटनाओं को सही ढंग से नहीं देख पाता और वे अक्सर वह सुनते और देखते हैं जो वहाँ नहीं होता। उनके सोचने का ढंग अस्त–व्यस्त और असंगठित होता है और वे दूसरों से सही ढंग से बातचीत करने में असफल रहते हैं।

मनोविदलन का चित्रांकन नीचे की सारिणी में दिया जा रहा है :

प्रकार	लक्षण
1. कैटाटोनिया	गत्यात्मक क्रिया के अस्वाभाविक ढंग, बोलने में व्यवधान, जैसे बात का दोहराना या कठोर आसन।
2. असंगठित	मौखिक असमानता, कमजोर विकसित विचार
3. व्यामोही	एक या अधिक विचारों के समूह में तल्लीन
4. अंतरन रहित	मतिभ्रम, असंगत
5. अवशिष्ट	विनिवर्तन, अभिप्रेरण का अभाव आदि

मनोविदलन के मूल लक्षण हैं विचारों की बाधा, प्रत्यक्षीकरण की बाधा, सांवेगिक अभिव्यक्ति में बाधा, बोलने में बाधा, सामाजिक विनिवर्तन, निम्न अभिप्रेरण।

20.3.5 व्यक्तित्व विकार

राममोहन एक कंपनी में लिपिक है। एक लिपिक के नाते दिये गये कार्य को करने योग्य है। किंतु जब कोई परिस्थिति सामने आती है और उसे निर्णय लेना होता है तो ऐसा करने

में वह समर्थ नहीं होता। उसका अपने वरिष्ठ लोगों के साथ अच्छा संबंध है क्योंकि वह अत्यंत विनम्र है, किंतु जब उसकी प्रोन्नति का प्रश्न आता है तो उस पद के लिए उसके अधिकारी उसकी क्षमता के बारे में आश्वस्त नहीं होते।

यह आश्रित व्यक्तित्व विकार का एक प्रचंड मामला है जहाँ व्यक्ति सदैव अपनी चिंता किये जाने की आवश्यकता दर्शाता है और कोई भी निर्णय लेने की क्षमता प्रदर्शित करने की क्षमता नहीं दर्शा पाता। व्यक्तित्व विकार का दूसरा रूप समाज विरोधी व्यक्तित्व विकार है जिसमें व्यक्ति अनुत्तरदायित्वपूर्ण तथा समाज को तोड़ने वाला व्यवहार जैसे संपत्ति नष्ट करना, चोरी करना, आदि करता है।

व्यक्तित्व विकार सोचने, अनुभव करने और व्यवहार करने की कुअनुकूलन शैली द्वारा चरित्रांकित किया जाता है जो व्यक्ति के सामान्य रूप से कार्य करने में बाधा डालता है।

पाठगत प्रश्न 20.3

1. द्रव्य संबंधी विकार ग्रस्त व्यक्ति की मदद में उठाये जाने वाले पगों की सूची बनाइये।

   _____

   _____

2. मनोविदलन विकार के कोई दो लक्षण बताइये।

   _____

   _____

आपने क्या सीखा

- कोई विकार जो व्यक्ति को समाज में प्रभावी ढंग से कार्य करने से रोकता है मनोवैज्ञानिक विकार माना जाता है।
- व्यवहार में प्रचलित सामाजिक एवं सांस्कतिक मानदंडों से गंभीर विचलन दिखाई पड़ना चाहिए।
- किसी व्यवहार को असामान्य निश्चित करने के लिए कुछ विचार योग्य बातें मापदण्ड के रूप में प्रयोग की जाती हैं – कुअनुकूलन, चिड़चिड़ापन, संदिग्ध स्पष्टता, प्रेक्षक की असुविधा और नैतिक मानदण्डों का उल्लंघन।

- असामान्य व्यवहार का कारण जैविक या मनोवैज्ञानिक हो सकता है।
- कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिक विकार, चिंता, मनोदशा, द्रव्य संबंधी, मनोविदलन आदि हैं।
- चिंता विकार व्यक्ति के कार्य संपादन को शिथिल कर देता है।
- चिंता विकार के विभिन्न प्रकार – कायजन्य चिंता, सामान्यीकत, आतंकित, दुर्भीति (फोबिया), मनोग्रस्तात्मक बाध्य विकार हैं।
- मनोविदलन अत्यंत कष्टकारक मनोवैज्ञानिक विकार है। मनोविदलन में मूल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें खण्ड–खण्ड हो जाती हैं। मनोविदलन के विभिन्न प्रकार – कैटाटोनिया, असंगठित, व्यामोही, अंतर रहित, अवशिष्ट।

21

समूह प्रक्रम

मानव जीवन मुख्यतः विभिन्न प्रकार के समूहों पर निर्भर करता है। हम जन्म लेने के बाद विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साथी मनुष्यों पर निर्भर रहते हैं। हम अधिक समय तक लोगों के साथ परस्पर क्रिया करते हैं। एक बच्चा एक परिवार में जन्म लेता है, स्कूल जाता है और मित्र बनाता है। एक प्रौढ़ व्यक्ति किसी संगठन में कार्य करता है, परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं की देखभाल करता है, और दूसरे लोगों के साथ विभिन्न क्रिया–कलापों में संलग्न रहता है। उसका विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ कार्य करना बहुत कुछ समूह के प्रकार और उस परिस्थिति के संदर्भ में जिसमें वह कार्य करता है से निश्चित होता है। इस पाठ में आप समूह के स्वरूप, समूह निर्माण की प्रक्रिया और एक समूह का सदस्य होने के लाभ और हानि आदि के बारे में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप समर्थ होंगे :

- समूह के संप्रत्यय का वर्णन करने में,
- समूह में कार्य करने के ढंग को समझने में,
- समूह प्रक्रियाओं के स्वरूप को स्पष्ट करने में,
- समूह निर्माण में विभिन्न अवस्थाओं की चर्चा करने में,
- समूह के प्रकारों का वर्णन करने में,
- व्यक्ति के व्यवहार पर समूह के प्रभाव की चर्चा करने में।

टिप्पणी

21.1 समूह का स्वरूप

जब दो या अधिक लोग आपस में अन्तःक्रिया करते हैं हम कहते हैं कि समूह अस्तित्व में आ गया है। परस्पर अन्तःक्रिया करने और सामाजिक संबंध बनाने के बहुत से कारण हैं। उदाहरण के लिए विद्यार्थी कक्षा के बाहर अध्ययन में एक दूसरे के सहयोग हेतु परस्पर अन्तःक्रिया करते हैं। दूसरे परस्पर अन्तःक्रिया कर सकते हैं क्योंकि वे एक स्थान पर रहते हैं और उनका समान लक्ष्य होता है। वे साथ–साथ खेलना चाह सकते हैं और अपनी मैत्री की आवश्यकता पूरी कर सकते हैं। कुछ लोग अचानक मिलते हैं किंतु परस्पर अन्तःक्रिया करते रहते हैं क्योंकि उनको एक दूसरे का साथ संतोषजनक लगता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रत्येक समूह एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है। लक्ष्य जितना अधिक स्पष्ट होता है, समूह के सदस्यों में परस्पर अन्तःक्रिया और सहयोग उतना ही अधिक होता है। समूह के सदस्यों के मध्य संबंध कुछ समय (मास या वर्ष) के लिए स्थायी रहते हैं। समूह की एक रचना होती है और लोग सोचते हैं कि वे समूह का एक अंग है या उनमें अपनेपन की अनुभूति होती है।

भौतिक स्तर पर किसी उद्देश्य के लिए सामूहिकता को समूह कह सकते हैं। पाँचवी कक्षा के बच्चों का एक समूह होता है, बैंक अधिकारियों की एक समिति एक समूह है, एक ओर से बड़े लट्ठे को काटने वाले दो बढ़ई एक समूह का निर्माण करते हैं, फुटबाल खेलने वाली एक टीम भी समूह है आदि–आदि। इन सारे समूहों का अस्तित्व केवल भौतिक स्तर पर होता है और ये सीधा आमने–सामने की परस्पर अन्तःक्रिया करते हैं। इन समूहों में समूह के सदस्यों के मध्य सीधी और तुरंत बातचीत संभव होती है और ऐसा सामान्यतः होता रहता है।

वे लोग जिनमें कतिपय समान विशेषतायें होती हैं, वे सभी समूह बनाते हैं। उदाहरण के लिए एक कक्षा के सभी सिक्ख विद्यार्थी एक समूह कहे जा सकते हैं, एक छोटी कक्षा में सभी बायें हाथ से कार्य करने वाले विद्यार्थी एक दूसरा समुच्चय है, समुच्चय के सभी सदस्यों में कम से कम एक विशेषता समान है जो दूसरों में नहीं हो सकती। ऐसे समुच्चय के सदस्यों के मध्य कोई आमने–सामने बातचीत होना आवश्यक नहीं है। एक सदस्य दूसरे सदस्य को नहीं भी जानता हो सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक समूह दो या अधिक व्यक्ति से बनता है जिनमें अंतःक्रिया होती है और लक्ष्य समान होते हैं। उनके संबंधों में स्थायित्व होता है, और एक दूसरे पर निर्भर करते हैं और अपने को उस सामूहिकता का अंग मानते हैं।

एक समूह की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता परस्पर निर्भरता है। यह व्यवहार परिणामों और कार्यों से संबंधित हो सकती है। आइये हम परस्पर निर्भरता के तीन प्रकारों की जांच करें:

1. व्यवहार की परस्पर निर्भरता का संकेत इस तथ्य की ओर है कि एक सदस्य का व्यवहार दूसरे सदस्य के व्यवहार को उभारता है जो परिणामस्वरूप संपूर्ण समूह के कार्य करने को प्रभावित करता है।

2. परिणाम की परस्पर निर्भरता का संकेत इस तथ्य की ओर है कि प्रत्येक व्यक्ति की उपलब्धि (पुरस्कार की प्राप्ति) केवल उसी के व्यवहार का परिणाम नहीं है अपितु समूह के दूसरे सदस्यों के व्यवहार पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए आप सड़क पर चल रहे हैं आप तब तक सुरक्षित हैं जब तक कोई दूसरा व्यक्ति सामने या पीछे से नहीं टकरा जाता। इसका दूसरा अर्थ भाग्य की सहभागिता है, तात्पर्य किसी घटना का परिणाम समूह के प्रत्येक सदस्य को कम या अधिक प्रभावित करता है।

3. कार्य परस्पर निर्भरता का संकेत इस तथ्य की ओर है कि किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समूह के सदस्यों को अपनी क्रियाओं में सामंजस्य लाने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, फुटबाल या क्रिकेट खेलने के लिए खेल में जीत के लिए विभिन्न खिलाड़ियों की क्रियाओं में सामंजस्य नितांत आवश्यक है। वे आज्ञा–पालन के सिद्धांत के आधार पर कार्य करते हैं।

पाठगत प्रश्न 21.1

1. एक समूह की परिभाषा कीजिए।
2. एक समूह की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता क्या है?

21.2 समूह कैसे कार्य करता है?

जब भी एक समूह बनता है या संगठित होता है वह कतिपय मानदण्डों के आधार पर कार्य करता है। समूह के सदस्य भी विभिन्न भूमिकायें अदा करते हैं। वे प्रस्थिति में भी भिन्न होते हैं। अंततः एक समूह उच्च कोटि से समन्वित हो सकता है और सदस्य गण संसक्ति में सहभागी हो सकते हैं या नहीं। अच्छा होगा यदि हम समूह के कार्यों के विभिन्न आयामों के बारे में स्पष्ट हो लें।

क. भूमिकायें : एक समूह में विभिन्न सदस्यों से विभिन्न भूमिकायें अदा करने की अपेक्षा होती है। आप को याद होगा कि अनेक समितियों में हम देखते हैं कि लोग अध्यक्ष, मंत्री, कोषाध्यक्ष आदि की भूमिका में रहते हैं। ये सभी विभिन्न भूमिकायें अदा करते हैं जो समूह के लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

ख. मानदण्ड : प्रत्येक समूह कतिपय नियमों के अनुसार कार्य करता है। ये नियम ही मानदण्ड बनाते हैं। वे सुस्पष्ट या अव्यक्त हो सकते हैं और समूह के सदस्यों के व्यवहार को चालित करते हैं। यह अपेक्षा की जाती है कि सदस्य मानदण्डों को स्वीकार करें।

ग. प्रस्थितिः विभिन्न भूमिकाओं के साथ विशेष प्रकार की दर्जा या समूह में स्थिति होती है। यह स्थिति दिये गये कार्य की प्रकति और निर्णय लेने को प्रभावित करने

टिप्पणी

वाली शक्ति से संबंधित होती है। इस प्रकार समूह में स्थिति भिन्नता दष्टिगोचर होती है।

21.3 समूह की प्रक्रियाओं की प्रकति

समूह की प्रकति जानने के बाद आप की रूचि यह जानने में होगी कि लोग समूह के सदस्य क्यों बनते हैं, समूहों का निर्माण कैसे होता है, और समूह के सदस्य के क्या अनुभव होते हैं। आइये हम इन प्रश्नों की विस्तत जाँच करें।

समूह का सदस्य बनने के कारण

लोग किसी समूह का सदस्य मुख्यतः इसलिए बनते हैं क्योंकि उन्हें उससे कुछ लाभ मिलता है या आवश्यकतायें संतुष्ट होती हैं। ये कभी–कभी कतिपय इच्छित लक्ष्यों को प्राप्त करने के अवसर प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए एक फुटबाल का खिलाड़ी फुटबाल टीम का सदस्य बनना पसंद करेगा क्योंकि यह उसे फुटबाल खेलने योग्य बनायेगा। एक समूह व्यक्ति के लिए कम से कम चार तरीके से सहयोग करता है :

1. लोग समूह का सदस्य इसलिए बनना चाहते हैं क्योंकि समूह उन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता करते हैं जो कोई व्यक्तिगत रूप से नहीं प्राप्त कर सकता। उदाहरण के लिए आप किसी समूह के सदस्य इसलिए बनते हैं क्योंकि आपका मित्र या शिक्षक उस समूह का सदस्य है।
2. आप किसी समूह के सदस्य इसलिए बनते हैं क्योंकि आपको लगता है कि समूह के सदस्य संसाधनों (आर्थिक या अन्य) से युक्त हैं जो किसी समय आपकी भी मदद कर सकते हैं।
3. कभी–कभी लोग सुरक्षा की आवश्यकता पूरी करने के लिए किसी समूह का सदस्य बनते हैं। लोग सुरक्षा पा जाते हैं जब वे एक निश्चित समूह के सदस्य बन जाते हैं।
4. समूह अपने सदस्यों को एक सामाजिक सकारात्मक पहचान प्रदान करते हैं। लोग जो विभिन्न समूहों के सदस्य होते हैं उनमें अमुक समूह का सदस्य होने के नाते सकारात्मक अनुभूति और सकारात्मक आत्म प्रशंसा पैदा होती है।

सारांश में लोग समूह का सदस्य इसलिए बनते हैं क्योंकि समूह लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग करते हैं, संसाधनयुक्त होते हैं, सुरक्षा की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं और सामाजिक पहचान प्रदान करते हैं।

समूह अनुभवों का परिणामः संसक्ति

जब लोग काफी समय तक एक साथ रहते हैं तो बहुत से परिणाम सामने आते हैं। उदाहरण के लिए किसी समूह का सदस्य होना समूह के सदस्यों को संतोष देता है।

हम सभी भारतीय होने पर या किसी विशेष स्कूल में अध्ययन करने पर, या किसी विशेष संस्था में काम करने पर गर्व अनुभव करते हैं। इस प्रकार, संतोष की अनुभूति समूह को संसक्ति की ओर ले जाती है। एक संसक्त समूह में उच्च कोटि की एकात्मकता और सर्वसम्मति होती है। समूह की संरचना में शक्तियाँ होती हैं जो सदस्यों पर समूह में बने रहने के लिए कार्य करती है।

21.4 समूह निर्माण की अवस्थायें

समूह का निर्माण चार अवस्थाओं से गुजरता है। यह हैं :

क. दिशा दर्शन　　ख. क्रिया विधि

ग. नियम–कानून　　ग. नियमितीकरण

आइये हम समूह निर्माण के चरणों की महत्वपूर्ण विशेषताओं के बारे में जानकारी लें :

प्रथम अवस्था: दिशा दर्शन

समूह निर्माण के प्रारंभिक चरण में संभावित सदस्य कुछ समय तक एक साथ काम करते रहने के लाभ–हानि को आँकने का प्रयास करते हैं। इस चरण पर लोग समूह के लक्ष्यों और अपनी संभावनाओं का आकलन करते हैं। वे अमुक समूह का सदस्य बनने के पहले अपने लाभ–हानि की अधिक चिंता करते हैं। लोग एक दूसरे की रूचियों, योग्यताओं और ज्ञान आदि के बारे में सवाल–जवाब करने में अधिक समय लगाते हैं।

दूसरा चरण: क्रिया विधि

जब कोई व्यक्ति यह तय कर लेता है कि एक विशिष्ट लक्ष्य प्राप्त करने के लिए समूह का निर्माण उसके हित में है, तो उसका ध्यान लक्ष्य प्राप्त करने के साधनों पर केंद्रित हो जाता है। अब तक सदस्य गण, समूह के लक्ष्य को प्राप्त करने में अपने योगदान, अन्य उपलब्ध संसाधनों और समूह के सदस्यों के मिलने वाले लाभों के बारे में स्पष्ट हो चुके होते हैं।

तीसरा चरण: नियम-कानून

लंबे समय तक परस्पर अंत:क्रिया करते–करते समूह के सदस्यों के सामाजिक आदान–प्रदान का स्वरूप उभर आता है। प्रत्येक की भूमिका और उसके कार्य भी स्पष्ट हो जाते हैं। इसी चरण पर एक सदस्य समूह का नेतत्व संभाल लेता है और समूह की क्रियाओं को रूप प्रदान करने में निर्णायक भूमिका अदा करने लगता है। अन्य सदस्य उस नेता से मार्गदर्शन प्राप्त करने लगते हैं।

चौथा चरण: नियमितीकरण

इस चरण पर मानदण्ड और भूमिकायें जो तीसरे चरण पर उभरकर आती हैं, नियमिती हो जाती हैं। समूह के सदस्य लिखित या मौखिक रूप से इन नियमों को स्वीकार कर लेते हैं और उनके पालन की अपनी इच्छा प्रकट करते हैं।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 21.2

1. लोग समूह के सदस्य क्यों बनते हैं?
2. समूह निर्माण के चार चरणों का उल्लेख कीजिये।

21.5 समूह के प्रकार

सामान्य रूप से समूह दो प्रकार के होते हैं :

1. प्राथमिक समूह
2. गौण समूह

प्राथमिक समूह में विशेषकर निरंतर, निकट का और प्रत्यक्ष साहचर्य और सहयोग मिलता है। प्राथमिक समूह सबसे अच्छा उदाहरण परिवार है, जहाँ परस्पर निकटता और प्रत्यक्ष अंतःक्रिया देखी जा सकती है। प्राथमिक समूह के सदस्यों का समान भाग्य होता है। प्राथमिक समूह सभी सामाजिक संगठनों का केंद्रक होता है। ऐसे समूह बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं।

इसके विपरीत गौण समूह विशेष रूचि समूह होते हैं। उदाहरण के लिए इन समूहों की सदस्यता ऐच्छिक होती है। कोई किसी व्यावसायिक समूह का सदस्य हो सकता है जैसे डाक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, कलाकार, आदि–आदि। इन समूहों के सदस्यों के मध्य अनिवार्य रूप से प्रत्यक्ष अंतःक्रिया नहीं होती फिर भी वे सीधे संपर्क में आ सकते हैं।

लोग अपनी प्रतिष्ठा, मैत्री आदि मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गौण समूह का सदस्य बनते हैं। जब उनकी आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं तो वे गौण समूहों के बारे में अपनी धारणा बदल भी सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 21.3

1. दो प्रकार के कौन से समूह होते हैं?
2. गौण समूह का कोई उदाहरण दीजिये।

21.6 व्यक्ति के व्यवहार पर समूह के प्रभाव

एक व्यक्ति के किसी समूह का सदस्य बनने पर उसका व्यवहार अनेक प्रकार से प्रभावित होता है। आइये हम कुछ महत्वपूर्ण प्रभावों को विस्तत रूप से जाँच लें :

निर्णय लेना

देखा गया है कि अकेला होने पर व्यक्ति निर्णय लेते समय कम जोखिम लेता है। दूसरी ओर एक समूह में रहने पर यह दिखाई पड़ता है कि व्यक्ति अधिक जोखिम लेने को

तत्पर हो जाता है। एक पूरा समूह व्यक्ति की अपेक्षा अधिक जोखिम लेता है। यह घटनाक्रम जोखिम बदलाव जाना जाता है।

प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति की अपेक्षा समूह अधिक जोखिम क्यों उठाता है? विश्वास किया जाता है कि उत्तरदायित्वों के विस्तार के कारण ऐसा होता है। असफलता की स्थिति में दूसरे लोग भी भागीदार होते हैं और हर व्यक्ति के प्रति आक्षेप को कर देता है और जोखिम के लिये समझाने–बुझाने वाली बात समाप्त हो जाती है। यदि समूह के अधिकांश सदस्य विचाराधीन समस्या की प्रतिक्रिया स्वरूप जोखिम को ही उचित मानते हैं तो अधिकांश कारण और औचित्य चर्चा में आने पर जोखिम का ही समर्थन करेंगे।

सामाजिक सुविधा

सामाजिक सुविधा उस प्रभाव की ओर इंगित करती है जो दूसरों की उपस्थिति से किसी व्यक्ति के कार्यनिष्पादन पर पड़ता है। अपने व्यवहार का स्मरण करें। जब आप कोई सरल कार्य संपादित कर रहे हैं या कोई ऐसी चीज जिसे आप अच्छी तरह जानते हैं, ऐसे में एक संभावना होती है कि समूह के दूसरे सदस्य जैसे माता–पिता या शिक्षक आपके कार्य का मूल्यांकन करेंगे और आप अपना सर्वोत्तम कार्य निष्पादन दिखाने का प्रयास करते हैं। दूसरी ओर, ऐसी सजगता आपके कार्य निष्पादन की योग्यता में व्यवधान डालती है जबकि कार्य जटिल है और आपका निष्पादन कम हो जाता है।

पाठगत प्रश्न 21.4

1. एक समूह व्यक्ति की अपेक्षा अधिक जोखिम क्यों लेता है?
2. सामाजिक सुविधा का क्या प्रभाव होता है।

आपने क्या सीखा

- एक लक्ष्य के साथ कुछ समान विशेषतायें रखने वाले व्यक्ति एक समूह का निर्माण करते हैं।
- एक समूह बड़ी जनसंख्या के अंदर उपजनसंख्या है जिससे व्यक्तियों को उसमें और उसका होने की पहचान मिल सकती है।
- परस्पर निर्भरता एक समूह की महत्वपूर्ण विशेषता है। तात्पर्य है कि एक सदस्य का व्यवहार दूसरे सदस्य के व्यवहार को उभारता है, परिणामस्वरूप समूह को अमुक तरीके से कार्य करने को प्रभावित करता है।
- लोग विभिन्न कारणों से समूह के सदस्य बनते हैं क्योंकि समूह लाभदायक है और समूह के सदस्य संसाधनों और उत्तरदायित्वों वाले होते हैं जिनमें सहभागिता मिल सकती है।
- संसिक्तता लोगों के विश्वास की ओर इंगित करती है कि किसी एक समूह का सदस्य होने के नाते वह पुरस्कत होगा।

टिप्पणी

- समूह का निर्माण चार चरणों पर होता है वे हैं : 1. दिशादर्शन, 2. क्रिया विधि, 3. नियम–कानून, 4. नियमितीकरण।
- समूह दो प्रकार के होते हैं : प्राथमिक और गौण।
- समूह निर्माण व्यक्ति के व्यवहार को दो प्रकार से प्रभावित करता है : 1. निर्णय लेना, 2. कार्य संपादन।

पाठांत अभ्यास

1. एक समूह को परिभाषित कीजिये।
2. एक समूह की विशेषताओं को सूचीबद्ध कीजिये।
3. समूह के विकास के चार चरणों का वर्णन कीजिये।
4. किसी समूह का अंग होना व्यक्ति के व्यवहार को कैसे प्रभावित करता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

21.1 1. जब दो या अधिक लोग समान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अंतःक्रिया करते हैं तो एक समूह अस्तित्व में आता है।

2. परस्पर निर्भरता।

21.2

1. लोग समूह का सदस्य बनते हैं क्योंकि समूह :

लक्ष्य प्राप्ति में सहायता करता है: • संसाधनयुक्त होता है

• सुरक्षा की आवश्यकता की पूर्ति करता है • सामाजिक पहचान प्रदान करता है।

2. दिशा दर्शन, क्रिया विधि, नियम–कानून, नियमितीकरण

21.3

1. प्राथमिक और गौण समूह 2. शिक्षकों की समिति

21.4

1. क्योंकि असफलता की स्थिति में दूसरे लोग भी आक्षेप में भागीदार होते हैं।
2. जब एक व्यक्ति के कार्य निष्पादन में दूसरे लोगों के कारण सुधार आता है तो इसे सामाजिक सुविधा कहा जाता है।

पाठांत अभ्यास के संकेत

1. संदर्भ 21.1 2. संदर्भ 21.1
3. संदर्भ 21.4 4. संदर्भ 21.6

22

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण और अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण

हम पहले ही देख चुके हैं कि आत्म की अनुभूति की प्राप्ति एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। एक नवजात आत्म और दूसरों में अंतर करने के योग्य नहीं हो सकता है। हमारा आत्म ज्ञान इस अर्थ में विचित्र है कि हम इस बात के लिए जागरूक हैं कि हमारा एक आत्म है। इस प्रकार की आत्म चेतना एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

इस बात का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि आत्म के ज्ञान के लिए कुछ प्रकार के सामाजिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रारंभ में शिशु को बालक और बालिका के संसार जिसमें अन्य लोग आते हैं में भेद का अभाव होता है। बच्चा सामाजिक वातावरण में निमग्न होता है। वहीं से धीरे–धीरे बच्चा आत्म की सजगता प्राप्त करता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप समर्थ होंगे :

- आत्म की अभिवद्धि और विकास के लिए सामाजिक वातावरण के महत्व को समझने में।
- अंतःवैयक्तिक आकर्षण को निर्धारित करने वाले कारकों की पहचान करने में और
- आत्म–प्रत्यक्षीकरण में महत्वपूर्ण दूसरों के साथ अंतःक्रिया की भूमिका को समझने में।

टिप्पणी

22.1 दूसरों का प्रत्यक्षीकरण

शैशव के अंतिम चरण पर बच्चे आत्म के प्रतिनिधित्व की रचना एक वस्तुगत इकाई के रूप में प्रारंभ कर देते हैं। संज्ञानात्मक और भाषायिक विकास दूसरों के अंतःक्रिया को सरल बना देता है। दूसरे हमारी विशेषताओं को स्पष्ट करने में सहायता करते हैं। हम उनकी अपेक्षा के अनुकूल अपने व्यवहार को समायोजित कर लेते हैं। भाषा पर कुछ अधिकार के साथ बच्चे अपने आत्म ज्ञान को व्यवस्थित कर लेते हैं। पहचानना या निश्चित करना कि कोई वस्तु 'मेरी' है अन्य सभी वस्तुओं से 'मुझे' के कुछ पूर्व कल्पित अंतर को देखा जा सकता है। तीसरे वर्ष तक बच्चे में कुछ विशेषतायें प्रदर्शित करने की रूझान होती है। वे आंतरिक प्रक्रियाओं, धारणा, इच्छाशक्ति के अस्तित्व की ओर संकेत करने लगते हैं। जैसे–जैसे बच्चों का आत्म संप्रत्यय बढ़ता है अंतर और अधिक स्पष्ट हो जाता है। यह देखा जा सकता है कि आत्मसंप्रत्यय मूलरूप से एक सामाजिक क्रिया है। परिवेश में अन्य लोग उन्हें संदर्भ और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए सामान्य रूप से पाया जाता है कि माता–पिता बच्चों के कार्यों को स्वीकार या अस्वीकार करते हैं। वे लक्ष्य सुझाते हैं और आकांक्षाओं को प्रोत्साहित करते हैं। वे बच्चों को परिवेश में अनेक घटनाओं की बातें करते हैं। ये समस्त स्थितियाँ बच्चों को आत्म के बारे में सीखने में सहायक होती हैं। विशेषकर बच्चे संवेगात्मक नियमन के बारे में सीखते हैं।

फिर भी आत्म को मात्र दूसरों के द्वारा आकार देने वाली वस्तु समझना गलत है। यह एक जटिल सामाजिक उत्पाद है जिसमें बच्चे के अपने अनुभवों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

आत्म के बारे में सीखते समय बच्चों में यह समझ भी विकसित होती है कि लोग अन्य वस्तुओं से भिन्न होते हैं, उनकी कतिपय विशेषतायें होती हैं और वे स्वतंत्र मनोवैज्ञानिक अस्तित्व रखते हैं। शिशु दूसरे व्यक्तियों में अधिक रूचि लेते हैं। वे वस्तुओं और व्यक्तियों में अंतर के बारे में जागरूक होते हैं। यह पाया गया है कि दूसरों के बारे में समझ आत्म की समझ से संबंधित होती है। बच्चे दूसरों की आंतरिक प्रक्रियाओं जैसे अनुभूति, विचार और अभिप्राय के प्रति जागरूकता की प्रारंभिक अवस्था में होते हैं आयु के बढ़ने के साथ ही उनकी जागरूकता बढ़ती और विस्तत होती जाती है। स्कूल जाने वाले बच्चे दूसरों का जटिल और विस्तत वर्णन करते हैं। बच्चे सक्रिय रूप से एक सामाजिक समझ बना लेते हैं। इसमें बच्चों की स्वयं अपनी और दूसरों की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में समानता खोजना भी शामिल होता है।

22.2 धारणा निर्माण

दूसरों का प्रत्यक्षीकरण करना हमारे दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण कार्य है। जब आप किसी व्यक्ति से मिलते हैं तो उसके प्रति एक धारणा बना लेते हैं। इसके लिए उसे देखना और उसके द्वारा बोले गये कुछ शब्द ही पर्याप्त होते हैं। जब हम दूसरों को देखते हैं हम केवल कुछ छोटी–छोटी सूचनायें नहीं जोड़ते। बल्कि हम दूसरों के कुछ गुणों को

देखते हैं। हम एक गत्यात्मक पूर्ण बनाते हैं। हम पूर्ण व्यक्ति के प्रति एक धारणा बना लेते हैं। गुण कहीं शून्य में नहीं रहते वे एक दूसरे से अंतःक्रिया करते हैं और एक नया पूर्ण निर्मित कर लेते हैं।

धारणा बनाते समय अपने विश्वस्त या प्रशंसित स्रोतों पर अधिक महत्व के साथ निर्भर करते हैं। इस तरह कभी–कभी हम नकारात्मक सूचना पर बल देते हैं। हम असाधारण सूचना को भी महत्व देते हैं। अंततः प्रथम धारणाओं पर बाद की सूचना की अपेक्षा अधिक बल दिया जाता है। ऐसा पाया गया है कि दूसरों के बारे में कोई निर्णय करते समय उनके व्यवहार के उदाहरण याद करते हैं और उन्हीं पर अपना निर्णय आधारित करते हैं। धारणा बनाते और निर्णय लेते समय हम पूर्ववर्ती सारांश को भी मन में रखते हैं।

पाठगत प्रश्न 22.1

सत्य और असत्य बताइये :

1. प्रारंभ में बच्चा आत्म और दूसरों में अंतर नहीं कर सकता। (सत्य/असत्य)
2. बच्चे के बढ़ने के साथ उसका आत्म संप्रत्यय निश्चित हो जाता है। (सत्य असत्य)
3. विकसित होते हुए व्यक्ति को परिवेश के लोग आवश्यक संदर्भ और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। (सत्य असत्य)
4. धारणा निर्माण करते समय हम विश्वस्त स्रोतों पर निर्भर करते हैं (सत्य असत्य)
5. प्रारंभिक अवस्था से ही बच्चे दूसरों की भावनाओं के प्रति अतिसंवेदनशील होते हैं। (सत्य असत्य)

22.3 सामाजिक जगत के प्रति व्यवहार

अन्तरवैयक्तिक आकर्षण

हम उस सामाजिक जगत में रहते हैं जिस में और लोग भी रहते हैं। हम प्रायः उनसे परिवार, स्कूल, बाजार, लगभग हर जगह में अंतःक्रिया करते हैं। दूसरों के संपर्क में आकर व्यक्ति आत्म की अनुभूति करता है। इस प्रकार व्यक्तियों के मध्य होने वाली प्रक्रियायें या तकनीकी रूप से अंतःवैयक्तिक प्रक्रियायें हमारे जीवन का केंद्र बन जाती हैं। समाज मनोवैज्ञानिकों ने विस्तार से इन विभिन्न प्रक्रियाओं की खोज की है। यहाँ हम दो प्रक्रियाओं के बारे में जानेंगे – आकर्षण और दीर्घकालीन संबंध।

शारीरिक आकर्षण : सामान्यतः पाया गया है कि शारीरिक दष्टि से आकर्षक लोगों के प्रति हम अधिक सकारात्मक प्रतिक्रिया करते हैं। हम बहुधा आकर्षक व्यक्तियों के प्रति अधिक सुखद प्रतिक्रिया करते हैं।

टिप्पणी

समानता और पूरकता : हम अपने से समान लोगों को पसंद करते हैं। कहा जाता है समान उड़ान वाले पंछी एक साथ उड़ते हैं। दूसरे शब्दों में एक सी अभिवति और विचार रखने वाले लोगों को हम अधिक पसंद करते हैं। पूरकता वह स्थिति है जिसमें भिन्न होते हुये भी लोग एक दूसरे के पूरक होते हैं। और वे एक दूसरे से अंतःक्रिया करना पसंद करते हैं। ऐसा आकर्षण अमीर और गरीब के बीच भी हो सकता है।

अंतरंगता और निकटता : निकटता का तात्पर्य शारीरिक समीपता से है। पाया गया है कि मित्रता अक्सर उन लोगों के मध्य विकसित होती है जिन्हें हम बराबर देखते रहते हैं। इस प्रकार अंतरंगता और निकटता दूसरे व्यक्तियों के प्रति आकर्षण पैदा करती है। बार–बार अंतरवैयक्तिक संपर्क अंतरवैयक्तिक आकर्षण की ओर ले जाता है।

पारस्परिक पसंद : हम किसी व्यक्ति को पसंद करते हैं या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि दूसरा हमें पसंद करता है या नहीं। अक्सर हम उन लोगों से बचना चाहते हैं जो हमारे प्रति नकारात्मक धारणा रखते हैं और उन लोगों का साथ चाहते हैं जो हमें पसंद करते हैं।

अनुरागः अनुराग उन भावनाओं और संवेगों की ओर संकेत करते हैं जो गहनता और दिशा में भिन्न होते हैं। इस प्रकार हमारी भावनायें अति गहन या कम गहन और सकारात्मक या नकारात्मक हो सकती हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि कोई व्यक्ति कुछ ऐसा करता है जिससे सकारात्मक या नकारात्मक भाव उभरते हैं उसे हम पसंद या नापसंद करते हैं। यदि कोई व्यक्ति सकारात्मक या नकारात्मक भावों से मात्र जुड़ा भी होता है तो उसे हम पसंद या नापसंद करते हैं।

सम्बद्धता की आवश्यकता : हम अपने अवकाश का अधिकांश समय दूसरों के साथ अंतःक्रिया में लगाते हैं क्योंकि सम्बद्धता अस्तित्व में बने रहने के अवसर बढ़ाती है। इसने स्थायी सम्बन्ध के गुण या आवश्यकता की दिशा दिखाई है। स्थितिजन्य विशेषतायें भी इस आवश्यकता को उभार सकती हैं।

स्थायी संबंध : हमारे बहुत से संबंध बड़े लंबे समय तक चलते रहते हैं। वे आजीवन हो सकते हैं जैसे मित्रता, विवाह आदि। संबंध बहुत प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरण के लिए उनमें आत्मीयता, वचनबद्धता और गुण की मात्रा में अंतर हो सकता है।

बहुत से लोग संबंध को एक प्रकार का सामाजिक अनुबंध मानते हैं। हम संबंधों को पुरस्कार स्वरूप मानते हैं जो हमें संबंध स्थापित होने पर मिलता है। जिन क्षेत्रों में हममें कुछ कमी होती है उनमें मिलने वाला पुरस्कार अधिक मूल्यवान होता है। फिर भी सभी प्रकार के निकट संबंधों में परस्पर निर्भरता सबसे महत्व का समानतत्व है। व्यक्ति के रूप में बच्चे माँ के द्वारा विभिन्न प्रकार के लगाव के साथ पाले जाते हैं।

यह सुरक्षित, दूर–दूर और उभयमुखी हो सकते हैं। मनोवैज्ञानिक सोचते हैं कि शिशु दूसरे व्यक्ति पर विश्वास और प्रेम करना, अविश्वास करना और दूर रहना या अपने लगाव के आधार पर दोनों का मिला–जुला रूप सीखते हैं। ऐसा पाया गया है कि माँ का शिशु से संपर्क और बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति उसकी जागरूकता एवं अनुकूलन सुरक्षित लगाव की ओर ले जाता है।

बच्चों को अपने माता–पिता तथा भाई–बहनों के साथ अंतःक्रिया की प्रतिकति बच्चों में स्नेह और प्रेम के गुण की रचना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। माता–पिता के लिए उनका प्रेम माता–पिता के प्रति उनके आकर्षण और वैयक्तिक सद्गुणों से निर्धारित होता है। भारतीय समाज द्वारा जिन कुछ सद्गुणों पर बल दिया जाता है वे इस प्रकार हैं।

दान : माता–पिता की सहायता करना, क्षमा करना और सहन करना।

न्याय : माता–पिता के प्रति कर्तव्य तथा उनके अधिकारों का सम्मान करना।

विवेकशीलता : उनके लाभ के लिए तर्क का प्रयोग करना।

धैर्य : उनके लाभ के लिए कष्ट सहन करना।

संयम : विध्वंसक संवेगों पर नियंत्रण करना और आत्मानुशासन का अभ्यास करना।

घनिष्ट मित्रता

जब मित्र एक साथ काफी समय तक रह लेते हैं, विभिन्न स्थितियों में अंतःक्रिया करते हैं और एक दूसरे को सांवेगिक सहायता प्रदान करते हैं तब घनिष्ट मित्रता दिखाई देती है। बचपन में बच्चे मित्रों के साथ विभिन्न क्रिया कलापों में भाग लेने के इच्छुक रहते हैं तथा दोनों पक्ष उसमें आनंद लेते हैं। लगाव की उपरवर्णित शैली बच्चों की अंतःक्रिया को प्रभावित करती है और बदले में उनके संबंधों पर गुणात्मक प्रभाव डालती है। किशोरावस्था और पूर्व प्रौढ़ावस्था में मित्रता और प्रगाढ़ हो जाती है। यह देखा गया है कि महिलायें पुरुषों की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ मित्र बनाती हैं। घनिष्ठ संबंधों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यवहारों में दिखाई देती है। जिसके अंतर्गत आत्म रहस्य खोलने वाला व्यवहार, संवेगात्मक अभिव्यक्ति, सहायता लेना और देना, विश्वास अनुभव करना, एक दूसरे के साथ होने पर सुख अनुभव करना आदि आते हैं। कुछ लोग घनिष्ठ मित्रता बनाने में असफल रह जाते हैं और अकेलापन अनुभव करते हैं।

पाठगत प्रश्न 22.2

सही विकल्प चुनिये:

1. हम समानता और परस्पर आकर्षण कब अनुभव करते हैं :
   - क. जब अपने से मिलती अभिवत्तियों और विचारों वाले लोगों को पसंद करते हैं।
   - ख. हम उन लोगों को पसंद करते हैं जिनकी अभिवत्तियाँ और विचार समान होते हैं।
   - ग. हम आकर्षक लोगों को पसंद करते हैं।
2. हम दीर्घकालीन संबंध पसंद करते हैं :
   - क. क्योंकि संबंधों का मूल्य हम जानते हैं।
   - ख. क्योंकि परस्पर निर्भरता संबंधों का एक सामान्य तत्व है।
   - ग. क्योंकि हम अपने प्रियजनों से लगाव रखते हैं।
   - घ. ऊपर के सभी।

आपने क्या सीखा

- आत्म प्रत्यक्षीकरण एक जटिल सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें बच्चे के अपने अनुभवों और समाज दोनों की अहम भूमिका होती है।
- बच्चा दूसरों से अंतर करना सीखता है और एक स्वतंत्र मनोवैज्ञानिक आस्तित्व रखता है।
- हम सारी जानकारी के आधार पर दूसरों के प्रति राय बनाते हैं।
- पारस्परिक आकर्षण का निर्धारण अनेक कारकों के आधार पर होता है – शारीरिक आकर्षण, परिचय, समानता आदि।
- महत्वपूर्ण दूसरे – माता–पिता, भाई–बहन, मित्र आदि आत्म–प्रत्यक्षीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- दीर्घकालीन संबंध व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक और संवेगात्मक सहायता प्रदान करता है।

पाठांत अभ्यास

1. आत्म विकास में दूसरों के प्रत्यक्षीकरण की भूमिका की चर्चा कीजिये।
2. पारस्परिक आकर्षण में विभिन्न कारकों की भूमिका स्पष्ट कीजिये।
3. दीर्घकालीन संबंधों के लिए अपनी दष्टि से महत्वपूर्ण कारकों की पहचान कीजिये।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

22.1

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

22.2

1. (ख) 2. (घ)

पाठांत अभ्यास के संकेत

1. संदर्भ 22.1
2. संदर्भ 22.3
3. संदर्भ 22.3

23

मनुष्य-पर्यावरण अंतःक्रिया

पर्यावरण एक विशाल संप्रत्यय है। वह सब कुछ जो हमारे जीवन को प्रभावित करता है संपूर्णता में पर्यावरण जाना जाता है। मानव प्राणी के नाते बहुधा हम अपने चारों ओर की परिस्थितियों के मनुष्यों और अन्य प्राणियों पर प्रभाव के प्रति चिंतित होते हैं। आज समस्त विश्व में पर्यावरण के गुणात्मक ह्रास के प्रति चिंता व्याप्त है और पर्यावरण की विस्तत क्षति को रोकने और उसकी गुणात्मक उन्नति के प्रयास किये जा रहे हैं।

पर्यावरण के प्रति चिंता के परिणामस्वरूप विश्व के समस्त राष्ट्राध्यक्षों की प्रथम बैठक 'अर्थसमिट' पर (औपचारिक रूप से 'यूनाइटेड नेशंस कांफ्रेंस ऑन एनवाइरनमेंट एण्ड डेवलपमेंट (यू.एन.सी.ई.डी) नाम से प्रचलित 1992 में रिओडिजैनेरिओ में संपनन हुई थी। इस बैठक में अपने पर्यावरण के प्रति विश्वव्यापी चिंता व्यक्त की गई। अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम इसी 1992 के सम्मेलन के परिणाम की उपलब्धि है और समाज के सभी वर्ग के लोगों को पर्यावरणीय चिंता के बारे में विश्वव्यापी शिक्षण के प्रयास किये जा रहे हैं। हम जिस पर्यावरण में रहते और कार्य करते हैं वह हमारे विचारों, भावनाओं और व्यवहार को प्रभावित करता है। मनुष्य और पर्यावरण का संबंध द्विपक्षीय है। अर्थात् मनुष्य पर्यावरण से प्रभावित होते हैं और वे भी पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। पर्यावरण मनोविज्ञान का अध्ययन इसी अंतःक्रिया पर बल देता है। इस पाठ में हम मनुष्य और पर्यावरण की अंतःक्रिया के विभिन्न पक्षों के बारे में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप समर्थ होंगेः

- पर्यावरण के संप्रत्यय को स्पष्ट करने में,
- मनुष्य और पर्यावरण की अंतःक्रिया के विभिन्न पक्षों का वर्णन करने में,

टिप्पणी

- मनुष्य पर पर्यावरण के प्रभाव को स्पष्ट करने में,
- मनुष्य के व्यवहार का पर्यावरण पर प्रभाव बताने में, और
- पर्यावरण पर भावी खतरों का वर्णन करने में।

23.1 मनुष्य-पर्यावरण अंतःक्रिया

हम जानते हैं कि भौतिक पर्यावरण हमारे व्यवहार को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, ऐसा देखा गया है कि ठंडे मौसम की अपेक्षा गर्म और उमस भरे मौसम में लोग चिड़चिड़े और आक्रमक हो जाते हैं। गर्मी के महीनों में मार्ग हिंसा के बारे मैं दैनिक समाचार पत्रों में आपने अवश्य पढ़ा होगा। पर्यावरण की ऐसी परिवर्तनशीलता में हमारी रूचि ने पर्यावरण मनोविज्ञान के क्षेत्र का विकास किया।

मनोविज्ञान को यह क्षेत्र मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं और भौतिक पर्यावरण–दोनों प्राकतिक एवं मानवकत–के मध्य परस्परिक संबंधों के अध्ययन के लिए समर्पित है। पारस्परिक संबंध द्विमार्गी प्रक्रिया से कार्य करता है जिसमें पर्यावरण मानव व्यवहार पर प्रभाव डालता है और मनुष्य पर्यावरण को प्रभावित करता है। इस अंतःक्रिया के विभिन्न पक्षों को समझने के लिए पर्यावरण के विभिन्न प्रकारों, जिनका हम सामना करते हैं; को समझना उपयोगी होगा। पर्यावरण के विभिन्न प्रकारों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है:

भौतिक पर्यावरण : इसके अंतर्गत भौतिक यथार्थ और समाज–सांस्कतिक परिदश्य, जो हमारे चारों ओर रहता है, आते हैं। शोरगुल, तापक्रम, जल और वायु के गुण और विभिन्न पदार्थ और वस्तुयें हमें चारों ओर से घेरने वाला भौतिक जगत बनाते हैं।

सामाजिक एवं सांस्कतिक पर्यावरण : इसके अंतर्गत सामाजिक अंतःक्रिया के पक्ष और उनके उत्पाद आते हैं जैसे विश्वास, धारणायें, रूढ़ियाँ इत्यादि। इसमें पर्यावरण के भौतिक और अभौतिक पक्ष शामिल रहते हैं।

मनोवैज्ञानिक पर्यावरण : इसके अंतर्गत पर्यावरण के किसी समुच्चय से संबंधित प्रत्यक्षीकरण और अनुभव आते हैं। कुछ पर्यावरण उत्तेजक हो सकते हैं जबकि दूसरे शिथिल और उबाऊ। मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति बहुधा संगठनात्मक संदर्भ में प्रयोग होती है।

पर्यावरण का विषय अन्य अनेक विषयों के लिए प्रासंगिक है, जैसे भूगोल, वास्तुशिल्प, नगरीय नियोजन आदि। वास्तव में इसकी प्रकति बहुविषयक है। इसे पर्यावरण विज्ञान के रूप में जाना जाता है।

मनुष्य–पर्यावरण अंतःक्रिया के पाँच प्रमुख अवयव हैं। इन अवयवों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है:

1. **भौतिक पर्यावरण:** इसमें प्राकतिक पर्यावरण के पक्ष आते हैं, जैसे जलवायु, भूभाग की विशेषतायें, तापमान, वर्षा, वनस्पति, पशु–पक्षी आदि।

2. **सामाजिक एवं सांस्कतिक पर्यावरणः** इसके अंतर्गत सांस्कतिक पर्यावरण के सभी पक्ष आते हैं जैसे, मानबिंदु, रीति–रिवाज, समाजीकरण की प्रक्रिया आदि। इसमें दूसरे लोगों से संपर्क और उनकी कतियाँ आते हैं।

3. **पर्यावरणीय दिशा-निर्देशनः** यह अपने पर्यावरण के बारे में लोगों के विश्वास का संकेत करता है। उदाहरण के लिए कुछ लोग पर्यावरण को भगवान के समान मानते हैं और इसीलिए वे इसके हर पक्ष को बड़े ही सम्मान से देखते हैं और उसे पूर्णरूप से बनाये रखने का प्रयास करते हैं तथा उसे प्रदूषित नहीं होने देते।

4. **पर्यावरणीय व्यवहारः** यह लोगों की सामाजिक अंतःक्रिया के दौरान पर्यावरण के प्रयोग की ओर संकेत करता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति जब अपनी पहचान पर्यावरण से करता है तो पर्यावरण को व्यक्तिगत स्थान मानता है।

5. **व्यवहार के उत्पादः** इसमें लोगों के कार्यों के परिणाम आते हैं जैसे घर, नगर, बाँध, स्कूल आदि। इस प्रकार ये पर्यावरण के साथ व्यवहार के उत्पाद या परिणाम हैं।

पर्यावरण के उपर्युक्त सभी पक्ष पर्यावरण और मनुष्य के मध्य अंतःक्रिया के अध्ययन के महत्वपूर्ण अवयवों को चित्रित करते हैं। यह जानना बहुत महत्वपूर्ण है कि मनुष्य पर्यावरण का एक अंग है और पर्यावरण को प्रदूषित करने का परिणाम मनुष्य और अन्य प्राणियों का लुप्त होना होगा। इसीलिए पर्यावरण को सुव्यवस्थित रखना मनुष्य का मुख्य दायित्व है क्योंकि इसके विनाश का अर्थ मानव जीवन का विनाश है।

पाठगत प्रश्न 23.1

निम्नलिखित वाक्यों को एक शब्द दीजिये :

1. सामाजिक अंतःक्रिया के दौरान लोगों द्वारा पर्यावरण का प्रयोग————————।
2. लोगों के कार्यों का परिणाम जैसे बाँध, स्कूल और मकान ————————।
3. पर्यावरण के बारे में लोगों का विश्वास ————————।
4. संस्कति के सभी पक्ष ————————।
5. प्राकतिक पर्यावरण के पक्ष ————————।

23.2 भौतिक बनाम मनोवैज्ञानिक पर्यावरण

भौतिक और मनोवैज्ञानिक पर्यावरण के बीच के अंतर को समझना महत्वपूर्ण है। भौतिक वातावरण वह है जो बाहर भौतिक रूप से दिखाई देता है, जैसे मकान, पेड़, पहाड़ आदि।

दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक पर्यावरण वह है जो लोगों के मन में रहता है। भौतिक पर्यावरण से इसका कुछ संबंध हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। उदाहरण के लिए आप सागर तट पर बैठे हैं, जहाँ भौतिक रूप से जहाज, नौकायें, खाड़ी और सागर की लहरें (ये सभी भौतिक पर्यावरण बनाती हैं) आदि आपके सामने हैं; फिर भी वहाँ बैठे होने पर भी जो कुछ आपके सामने है उसके बारे में आप सचेत न हों और आप कुछ और सोच रहे हों। उपस्थित भौतिक पर्यावरण आपको प्रभावित नहीं कर रहा है। यही वह मनोवैज्ञानिक पर्यावरण है।

कुर्ट लिवीन, एक जर्मन मनोवैज्ञानिक ने भौतिक और मनोवैज्ञानिक पर्यावरण में अंतर किया। लिवीन ने व्यक्ति और पर्यावरण के मध्य संबंध को स्पष्ट करने के लिए 'लाइफ स्पेस' का संप्रत्यय प्रस्तुत किया। लिवीन के अनुसार, लाइफ स्पेस संपूर्ण मनोवैज्ञानिक यथार्थ है जो एक व्यक्ति के व्यवहार को निश्चित करता है। लाइफ स्पेस के अंतर्गत पर्यावरण में उपस्थित प्रत्येक वस्तु आती है जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। पर्यावरण व्यक्ति के बाहर की हर वस्तु को समाहित करता है। जिसमें भौतिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पक्ष आते हैं। लिवीन पर्यावरण में व्यक्ति को लाइफ स्पेस कहता है। गणितीय ढंग से लाइफ स्पेस को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है: (B= Behaviour व्यवहार; f=Foreign hull भौतिक पर्यावरण जो प्रत्यक्ष रूप से व्यवहार को प्रभावित नहीं करता; L= Life Space लाइफ स्पेश; P = person व्यक्ति; E= Environment पर्यावरण)

$$B= f(L) = f(P.E.)$$

इसका आशय है कि एक निश्चित समय पर किसी व्यक्ति का व्यवहार लाइफ स्पेस का एक कार्य है। इसके अंतर्गत व्यक्ति और पर्यावरण, लाइफ स्पेस में पर्यावरण व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है और दूसरा भौतिक पर्यावरण जो व्यवहार को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं करता उसे फारेन हल (Foreign hull) कहते हैं। किसी दूसरे समय पर, घटनायें या पदार्थ व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित कर सकते हैं, उस स्थिति में व्यवहार को प्रभावित करने वाला फारेन हल का भाग पर्यावरण का भाग हो जाता है और पर्यावरण विस्तत होकर फारेन हल के कुछ भाग को समाहित कर लेता है।

23.3 मनुष्य के व्यवहार पर पर्यावरण के प्रभाव

हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि पर्यावरण मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करता है और मनुष्य का व्यवहार पर्यावरण को प्रभावित करता है। पर्यावरण मानव प्राणियों पर पोषक एवं विनाशक दोनों प्रकार का प्रभाव डालता है।

संपूर्ण मानव इतिहास में लोग बाढ़, भूकंप और अन्य प्राकतिक आपदाओं से पीड़ित रहे हैं। विज्ञान के विशद विकास के बावजूद हम प्राकतिक भयावह घटनाओं के प्रभाव पर

नियंत्रण पाने में समर्थ नहीं हो पाये हैं और न ही प्राकतिक आपदाओं पर नियंत्रण पा सके हैं। इधर के समय में प्रौद्योगिकी नवाचारों और उन्नति ने हमारे लिये पर्यावरण के संभावित नये खतरे पैदा कर दिये हैं, जो मानवकत हैं। ये खतरे भौतिक दष्टि से हानिकारक और तनावपूर्ण हैं। लोगों को इन तनाव पैदा करने वाले कारकों का सामना करना है। ऐसे मानवकत तनाव पैदा करने वाले अनेक कारक हैं। ये तनाव पैदा करने वाले कारक प्रदूषक पदार्थ कहलाते हैं और मूलरूप से ये चार होते हैंः वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, और भीड़।

हम अनेक प्राकतिक आपदायें पाते हैं जो मनुष्य के व्यवहार को अनेक प्रकार से प्रभावित करती हैं। इन प्राकतिक आपदाओं में भूकंप, ज्वालामुखी फटना, तूफान, बवंडर, चक्रवात, दुर्भिक्ष, बाढ़ आदि आते हैं। लाटूर और भुज के भूकंप (2001) और उड़ीसा का बहत चक्रवात (1999) ने केवल संपत्ति और भौतिक पर्यावरण को भीषण क्षति नहीं पहुँचाई किंतु लोगों के जीवन पर भी उनका दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा था।

बहुत सी मानव कत आपदायें भी होती हैं। प्रौद्योगिकी की आपदायें जैसे थ्रीमाइल आइलैंड (Three Mile Island, 1979), के केर्नोबिल (Chernobyl), 1986 और भोपाल मेथी आइसोसाइनाइड (Bhopal Methy Iso Cynide- MIC), आपदा, (1984) आदि कुछ प्रमुख मानवकत आपदायें हैं। मानव जीवन पर जिनका गहन और दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा है। भोपाल की दुर्घटना में आठ हजार से अधिक लोगो की मत्यु हुई और दो लाख से अधिक लोग शारीरिक दष्टि से प्रभावित हुये। गैस त्रासदी के शिकार हजारों लोग आज भी मानसिक और शारीरिक समस्याओं से पीड़ित हैं। शोध अध्ययनों से पता चलता है कि ऐसी आपदाओं में बचे हुए लोग चिंता, पलायन, अवसाद, तनाव, क्रोध, डरावने सपनों से पीड़ित रहते हैं।

23.4 मानवीय व्यवहार का पर्यावरण पर प्रभाव

जैसा पहले बताया जा चुका है कि मनुष्य के क्रियाकलाप भी पर्यावरण को प्रभावित करते हैं। वास्तव में, लगभग प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्रियाओं द्वारा पर्यावरण को जिसमें वह रहता है सकारात्मक और निषेधात्मक रूप से प्रभावित करता है। जब भी कोई स्कूटर, मोटर साइकिल या कार चलाता है, स्प्रे प्रयोग करता है, खाना बनाता है आदि तो पर्यावरण प्रभावित होता है। अपनी क्रियाओं द्वारा पर्यावरण के क्षय को हम प्रत्यक्ष देख नहीं पाते। कल्पना कीजिये अपने ग्रह पर रहने वाले असंख्य लोग किसी न किसी तरह से पर्यावरण पर प्रभाव डालते हैं और उसका संचित प्रभाव कितना विशद होगा। मानवीय क्रियाओं का पर्यावरण पर दीर्घकालिक प्रभाव आने वाली पीढ़ियों के जीवन को भी प्रभावित करेगा।

सौभाग्य से अपने पर्यावरण से विनाश लीला करने बाद समस्त विश्व के लोग मानवकत इस आपदा के बारे में सजग हो गए हैं। अब आपदा के दुष्परिणामों को नियंत्रित करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

टिप्पणी

23.5 भविष्य की योजना

जैसा पहले बताया जा चुका है कि राष्ट्र संघ गंभीरता से विश्वभर में पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाली लोगों की क्रियाओं पर नियंत्रण पाने के लिए कार्य कर रहा है। पर्यावरण कुछ सीमाओं के साथ प्रकति दत्त संपत्ति है हमें उसका औचित्यपूर्ण प्रयोग करना सीखना है। हवा, पानी, भोजन, ईंधन आदि सभी मनुष्य को दिये गये वरदान हैं और हमें उनका न्यायपूर्ण प्रयोग एवं उनका संरक्षण करना सीखना है हमें पानी और हवा को संरक्षित रखने पर अधिक ध्यान देना है। निरर्थक पदार्थ, कचरा आदि को नाली में बहता मल और कूड़ा फेंकने पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

पानीः हम प्राकतिक संसाधनों का प्रयोग करते हैं पर उनकी पूर्ति नहीं कर पाते, और पानी एक ऐसा ही संसाधन है। हमारे ग्रह पर आज कम से कम 80 देशों में पानी की गंभीर कमी है जो खेती के लिए एक गंभीर खतरा है। इन देशों में भारत भी है जहाँ पानी की कमी खेती को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। कर्नाटक और तमिलनाडु में पानी की कमी एक उदाहरण है। महानगरों में भी पानी की कमी एक गंभीर खतरा है। उदाहरण के लिए गर्मी के दिनों में दिल्ली क्षेत्र में पानी की अधिक कमी होती है और आस–पास के नगरों से आने वाली आबादी के कारण यह कमी दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। इसका समाधान वर्षा के पानी के एकत्रीकरण में है और वर्षा के पानी को बढ़ी पानी की आवश्यकता की आपूर्ति के लिए प्रयोग किये जाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

हवाः हवा के गुण को मोटर वाहनों और औद्योगिक निस्सारित पदार्थों ने बुरी तरह प्रभावित किया है। इन साधनों से निस्सरित कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, सफल्र डाईऑक्साइड आदि जहरीली गैस हवा में मिल रही हैं जिन्हें हम अपनी सांस में लेते हैं जन स्वास्थ्य की रक्षा के लिए इस सड़न को रोकने के गंभीर प्रयास करने की आवश्यकता है। इस दिशा में दिल्ली प्रशासन ने सीएनजी का प्रयोग करके एक कदम उठाया है। इसे जनयातायात में प्रयोग किया जा रहा है जिससे दिल्ली में हवा में गुणात्मक अंतर आया है। ऐसे ही नवाचार बड़ी मात्रा में हवा की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं।

निरर्थक पदार्थः संभवतः मानवीय क्रियाओं का सबसे अधिक प्रकट मानवकत उत्पाद निरर्थक पदार्थ है। इस निरर्थक पदार्थ में नाली में बहता मल और कचरा आते हैं। इनका प्रबंधन स्थानीय प्रशासन, नगर पालिका और महानगर निगम के लिए एक गंभीर समस्या है। और अभी तक नाली में बहते हुए मल को बिना समाधान के नदियों में गिरा दिया जाता है। इसने जल प्रदूषण की समस्या को गंभीर बना दिया है। यह नदियों के पानी को मनुष्य के उपयोग के योग्य नहीं रहने देता। अब इस गंभीर समस्या के प्रति जागरूकता पैदा हुई है और नाली के मल को पूर्व संशोधित किये बिना नदियों या सागर में न गिराया जाये इसके प्रयास किये जा रहे हैं।

जिस कचरे का उत्पाद हम अत्याधिक मात्रा में करते हैं उससे एक और भीषण समस्या पैदा होती है। कचरे का निस्तारण विशेषकर न गलने वाले पदार्थ जैसे प्लास्टिक के थैले एक गंभीर समस्या है। हमें दैनिक जीवन में प्लास्टिक बैग के प्रयोग में सावधानी बरतनी चाहिए। धरती को ऐसे निरर्थक पदार्थ के प्रभाव से होने वाले प्रदूषण से बचाने के लिए प्रयुक्त वस्तुओं से फिर से वस्तुयें बनाने का कार्य प्रारंभ करना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 23.2

1. पानी की कमी को दूर करने के लिए कोई एक सुझाव दीजिये।

   ——————————————————————————————

2. वायु के प्रदूषण को कम करने के लिए क्या करना चाहिये?

   ——————————————————————————————

3. निरर्थक (काम न आने वाला) पदार्थ के समाधान के लिए सुझाव दीजिये।

   ——————————————————————————————

आपने क्या सीखा

- पर्यावरण के दो भाग होते हैं : भौतिक (जैसे ध्वनि, ताप, हवा, पानी आदि) और मनोवैज्ञानिक पर्यावरण (व्यक्ति द्वारा पर्यावरण का प्रत्यक्षीकरण एवं अनुभव)
- मानवीय व्यवहार व्यक्ति और पर्यावरण के मध्य अंतःक्रिया का परिणाम होता है।
- पर्यावरणीय परिवर्तन, प्राकतिक जैसे भूकंप, सुनामी आदि और मानवकत जैसे भोपाल एमआईसी त्रासदी दोनों मानव व्यवहार को प्रभावित करते हैं।
- मनुष्य भी अपने क्रिया–कलापों जैसे कार चलाना, खाना बनाना आदि द्वारा पर्यावरण को प्रभावित करता है।
- पर्यावरण की रक्षा के लिए प्रभावी तकनीक विकसित करने की आवश्यकता है।

पाठांत अभ्यास

1. मनुष्य–पर्यावरण अंतःक्रिया के कौन–कौन से पहलू हैं? मानव व्यवहार पर पर्यावरणीय प्रभाव को स्पष्ट कीजिये।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

23.1

1. पर्यावरणीय व्यवहार
2. व्यवहार के उत्पाद
3. पर्यावरणीय दिशा–निर्देशन
4. सामाजिक–सांस्कतिक पर्यावरण
5. भौतिक पर्यावरण

23.2

1. वर्षा के जल का एकत्रीकरण
2. सीएनजी का प्रचलन
3. नाली के मल का पूर्व संसाधन और कचरे का चक्रीकरण

पाठांत अभ्यास के लिए संकेत

1. संदर्भ 23.1 और 23.3
2. संदर्भ 23.4 और 23.5

24

मनोरोग चिकित्सा

पिछले पाठ में मनोवैज्ञानिक विकारों के बारे में बताया गया था। मनोवैज्ञानिकों ने असामान्य व्यवहार के कारणों को समझाने और उनके समाधान के उत्तमतम समाधान खोजने का प्रयास किया है। ऐसे चार मुख्य प्रतिमान हैं जो मनोवैज्ञानिक विकारों और उनकी चिकित्सा से संबंधित हैं। इन्हें चिकित्सीय, मनोगतिक, व्यवहारपरक और मानवीय कहते हैं।

इस पाठ में असामान्य व्यवहार की चिकित्सा के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपागमों का वर्णन किया गया है जिन्हें मनोचिकित्सा कहा गया है। मनोचिकित्सा शब्द का प्रयोग उस प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए किया गया है जिसमें एक प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक पीड़ित व्यक्ति को सामान्य व्यवहार में सहायता करता है। मनोवैज्ञानिक सामान्यतः उपर्युक्त उपागमों में से एक का प्रयोग करता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप कर सकेंगे:

- मनोचिकित्सा के उद्देश्य का स्पष्टीकरण;
- मनोचिकित्सा के प्रमुख प्रतिमानों का वर्णन; और
- मनोचिकित्सा के प्रत्येक प्रतिमान के गुणों और दोषों का स्पष्टीकरण।

24.1 चिकित्सकीय प्रतिमान

चिकित्सकीय प्रतिमान के अनुसार असामान्यता शारीरिक कारणों से घटित होती है और यह एक प्रकार का रोग है, जिस का इलाज दवाओं के द्वारा किया जा सकता है। यह

उपागम अनुवांशिक और तंत्रिका संप्रवाहकों के असंतुलन की भूमिका की जाँच करता है। चिकित्सकीय प्रतिमान में प्रयोग किये जाने वाले चिकित्सात्मक उपागमों को दैहिक चिकित्सा कहा जाता है। जो तीन दैहिक चिकित्सा आजकल प्रयोग में लाई जाती हैं वे हैं, रसोचिकित्सा, विद्युत सापेक्षीय चिकित्सा (इलेक्ट्रो कन्वल्जिवथिरैपी) (ई.सी.टी.) और मनोशल्य चिकित्सा (साइको सर्जरी)

विद्युत सापेक्षीय चिकित्सा के अंतर्गत मनोविकार से पीड़ित व्यक्ति के सिर में विद्युताग्र के द्वारा थोड़े समय के लिए विद्युत धारा प्रवाहित करना आता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति के लिए विद्युत सापेक्षीय चिकित्सा में दो विद्युताग्र कनपटी क्षेत्र में लगाये जाते हैं और लगभग 200 मिलियाम्प 110 वोल्ट पर एक धारा एक विद्युताग्र से दूसरे विद्युताग्र तक 4-5 सेकंड तक चलाई जाती है। विद्युत सापेक्षीय चिकित्सा का प्रयोग अवसाद, दोहरा विकार (उन्माद–अवसाद) और अनियंत्रित इच्छा के सम्मोही विकार की चिकित्सा के लिए किया जाता है।

मनोशल्य चिकित्सा में मनोवैज्ञानिक कार्यशैली बदलने के लिए मस्तिष्क की शल्यक्रिया करना आता है। यह अंतिम उपाय है इसका प्रयोग आक्रमक मनोविदलन जैसे सीमांतक मनोवैज्ञानिक गड़बड़ी में किया जाता है।

सर्वसामान्य और प्रभावी दैहिक उपागम रसोचिकित्सा है जिसमें पीड़ित व्यक्ति को दवाइयाँ देना आता है। दवायें तीन प्रकार की होती है मनोविदलन और उन्माद की चिकित्सा के लिए मुख्य रूप से न्यूरोलिप्टिक (मुख्य शांत करने वाली या मनस्तापी विरोधी औषधियाँ) का प्रयोग करते हैं। अवसाद विरोधी दवाओं का प्रयोग अवसाद सहित अनेक विकारों में किया जाता है। चिंता विरोधी (छोटे ट्रैन्क्वीलाइजर) मुख्य रूप से चिंता विकार में प्रयोग होते हैं।

पाठगत प्रश्न 24.1

नीचे दिये गये रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :

1. चिकित्सीय प्रतिमान में प्रयुक्त उपचारात्मक उपागमों को ———————— उपचार कहते हैं।
2. वर्तमान में तीन दैहिक उपचारों ——— ——— और ———— का प्रयोग किया जाता है।
3. मुख्य रूप से मनोविदलन के उपचार में ———————— प्रयोग किये जाते हैं।
4. अवसाद के उपचार में ———————— प्रयोग होते हैं।
5. चिंताविरोधी औषधियों का प्रयोग मुख्यरूप से ———————— की गड़बड़ी में होता है।

24.2 मनोगतिक चिकित्सा

जैसा आपने पहले पढ़ा है कि सिग्मण्ड फ्रायड का मनोगतिक प्रतिमान मनोवैज्ञानिक आंतरिक कारकों के कारण पैदा होने वाले मानसिक विकारों को देखता है जो मूलतः बचपन के असमाधानित अचेतन द्वंद्व होते है। इस प्रतिमान में चिकित्सा को मनोविश्लेषण कहा जाता है। मनोविश्लेषण का उद्देश्य अचेतन द्वंद्वों को समझना होता है जो किसी व्यक्ति के मानसिक विकार के लिए उत्तरदायी होते हैं और तब व्यक्ति को उनके बारे में सचेत करना है। इससे व्यक्ति अपनी समस्याओं का प्रभावी ढंग से हल कर सकता है। मनोविश्लेषण में सामान्यतः मुक्त साहचर्य तकनीक प्रयोग की जाती है। इसका मूल उपक्रम है कि रोगी के मन में जो कुछ आता है वह कह देता है क्योंकि इसमें अहं की सेंसर करने या आतंकी अचेतन अनुक्रियाओं को बाधित करने की भूमिका को पार किया जाता है। मनोविश्लेषण का अंतिम लक्ष्य व्यक्तित्व में बड़ा परिवर्तन लाना है जिससे लोग बिना रक्षा युक्तियाँ प्रयोग किये हुए समस्याओं का यथार्थ तरीके से हल निकालने में समर्थ हो सकें। कभी–कभी सम्मोहन और स्वप्न व्याख्या का भी उपचार प्रक्रिया में प्रयोग किया जाता है।

24.3 व्यवहारपरक प्रतिमान

जैसा कि पिछले पाठ में आपने पढ़ा कि व्यवहारपरक प्रतिमान में विकारों को कुसमंजित व्यवहार के रूप में देखा जाता है। यह सुझाव देने वाले वाटसन प्रथम व्यक्ति थे कि दुर्भीत (किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति जैसे चूहे या सर्प इत्यादि) को अनुकूलन तकनीक से स्पष्ट किया जा सकता है। व्यवहारपरक उपचार में क्लासिकी अनुकूलन सिद्धांत प्रयोग होता है, जबकि व्यवहार परिवर्तन तकनीक क्रिया प्रसूत अनुकूलन पर आधारित होती है (आपको छठे पाठ में अनुकूलन के प्रकार बताये गये हैं।

व्यवहारपरक उपचार में माना जाता है कि अगर कुसमंजित व्यवहार क्लासिकी अनुकूलन द्वारा अर्जित किए जा सकते हैं, तो उन्हें उसी सिद्धांत से मिटाया भी जा सकता है। व्यवहारपरक उपचार के तीन उपागम हैं – अंतःस्फोटक चिकित्सा, फ्लडिंग और व्यवस्थित निःसंवेदीकरण। अंतःस्फोटक चिकित्सा और फ्लडिंग इस संप्रत्यय पर आधारित हैं कि यदि भय अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपन (जैसे सर्प) यदि बिना किसी अरूचिकर अनुभव के बार–बार उपस्थित होते हैं तो ये भय उत्पन्न करने वाली शक्ति खो देते हैं।

अंतःस्फोटक चिकित्सा में चिकित्सक सुरक्षित कक्ष में व्यक्ति के सामने बार–बार भय उत्पन्न करने वाली वस्तु की मानसिक प्रतिमायें प्रस्तुत करता है। व्यक्ति से कहा जाता है कि वह भय उत्पन्न करने वाली वस्तु के अधिकतम भयावह रूप की कल्पना करे। कई प्रयासों के बाद वह उद्दीपन चिंता पैदा करने वाली शक्ति खो देता है।

फ्लडिंग में व्यक्ति को भय या चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति का सामना करने को विवश किया जाता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति ऊँचाई से डरता है, तो उसे एक

ऊँचे भवन की छत पर खड़े रहने को विवश किया जा सकता है। कुछ लोगों पर यह उपागम प्रभावी होता है और परिस्थिति के भय को मिटा देता है। अंतःस्फोटक और फ्लडिंग चिकित्सा सीमित प्रभाव रखती हैं। व्यवस्थित निःसंवेदीकरण इससे अच्छा उपागम है।

व्यवस्थित निःसंवेदीकरण में व्यक्ति को दृश्यों या घटनाओं की एक श्रंखला बनाने को कहा जाता है जो व्यक्ति को धीरे–धीरे भय उत्पन्न करने वाली वस्तुओं या परिस्थितियों की ओर ले जाती हैं। उदाहरण के लिए शवों से डरने वाले व्यक्ति को एम्बुलेंस की कल्पना करने को कहा जा सकता है और तत्पश्चात विश्राम पर ध्यान दिया जाये। तब उसे शवदाहगह के पास जाने को कहा जा सकता है और अंत में (यद्यपि इसके बीच में कुछ और कदम हैं) व्यक्ति को शव के निकट जाने को कहा जा सकता है और उसी समय विश्राम पर ध्यान दिया जाये।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि क्लासिकी अनुकूलन पर आधारित उपागमों के अतिरिक्त कुछ चिकित्सायें क्रिया प्रसूत अनुकूलन पर आधारित हैं जिन्हें व्यवहार परिवर्तन कहा गया है। वैसे तो क्रियाप्रसूत अनुकूलन पर आधारित बहुत सी चिकित्सायें हैं, किंतु सभी में मूल रूप से तीन चरण शामिल हैं। पहला चरण अवांछित या कुसमायोजित व्यवहार की पहचान करना है। दूसरे चरण में कुसमायोजित व्यवहार को बनाये रखने वाले पुनर्बलनकों की पहचान शामिल है। अंतिम चरण में पर्यावरण को इस प्रकार पुनःसंचरित करना जिससे फिर से व्यवहार को पुनर्बलन न प्राप्त हो।

दूसरा रास्ता अवांछित व्यवहार को समाप्त करने के लिए उन उद्दीपनों को हटाना है जो उसे बनाये रखते हैं। यह विचार इस बात पर आधारित है कि उद्दीपन को हटाने से वह व्यवहार समाप्त हो जायेगा जो इससे पहले पुनर्बलित हुआ था। दूसरी विधि में उद्दीपन का प्रयोग होता है जिसमें स्वैच्छिक कुसमंजित व्यवहार के लिए दण्ड के रूप में निषेधात्मक प्रभाव होता है। सकारात्मक पुनर्बलन देकर वांछित व्यवहार को बढ़ाने के लिए क्रिया प्रसूत अनुकूलन का भी प्रयोग किया जा सकता है जबकि वांछित व्यवहार किया जा रहा हो। उदाहरण के लिए यदि हम चाहते हैं कि एक बच्चा प्रतिदिन अध्ययन करे, हम उसे जब भी वह अध्ययन करे उसकी रूचि के टीवी कार्यक्रम को देखने की अनुमति देकर यूँ कहें अधिक से अधिक एक घंटे के लिए, उसे पुनर्बलित कर सकते हैं।

हाल के वर्षों में मनोचिकित्सक का एक सामाजिक अधिगम उपागम उभर कर आया है। यह प्रतिमान व्यक्तित्व के व्यवहार एवं संज्ञानात्मक प्रतिमान के मध्य कड़ी के रूप में है। संज्ञानात्मक उपागमों की दष्टि में मानसिक विकार अतार्किक विश्वासों या त्रुटिपूर्ण सोच के कारण उत्पन्न होते हैं। चिकित्सा के अंतर्गत संज्ञानात्मक पुनर्रचना या सोचने के ढंग में परिवर्तन आते हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति विश्वास करता है कि यदि बिल्ली उसका रास्ता काटती है तो समस्यायें पैदा हो जायेंगी, ऐसा वह अनेक बार अनुभव कर सकता है जब तक कि उसे यह अनुभव नहीं हो जाता कि बिल्ली और निषेधात्मक घटनाओं के मध्य कोई संबंध नहीं है, इस प्रकार उसकी सोच में परिवर्तन हो जाता है।

पाठगत प्रश्न 24.2

नीचे दिये रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः

1. मनोविश्लेषण में बहुत अधिक प्रयोग किये जाने वाले उपागम को मुक्त ———————— कहते हैं।
2. मनोविश्लेषण का उद्देश्य ———————— द्वंद्वों को समझना है जो व्यक्ति के असामान्य व्यवहार के लिए उत्तरदायी होते हैं।
3. मनोविश्लेषण में प्रयोग किये जाने वाले अन्य उपागम ———————— और ———————— व्याख्या है।
4. चिकित्सा का व्यवहारपरक प्रतिमान ———————— के सिद्धांत का प्रयोग करता है।
5. व्यवहारपरक चिकित्सा पर आधारित तीन उपागम ———— ———— और ———————— हैं।
6. व्यवहारपरक परिवर्तन उपागम ———————— अनुकूलन पर आधारित हैं।

24.4 मानवतावादी चिकित्सा

व्यक्तित्व के मानवतावादी दष्टिकोण के अनुसार मूलतः लोग अच्छे होते हैं और विकास की खोज करते हैं तथा अच्छे जीवन स्तर के लिए कार्य करते हैं। सभी लोगों को आत्म सम्मान और जीवन को स्वरूचि के अनुसार ढालने की आवश्यकता होती है। मानव विशिष्ट इसलिए हैं क्योंकि उनमें स्वतंत्र इच्छा तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य करने की स्वाभाविक आवश्यकता होती है। अपनी विभवता को प्रत्यक्ष करने की आवश्यकताओं को आत्म प्रत्यक्षीकरण की दिशा में मूल अन्तर्नोद कहा जाता है।

मानवतावादी दष्टि में मनोवैज्ञानिक विकार वाह्य वातावरण द्वारा व्यक्तिगत विकास की दिशा में बढ़ने में बाधा उत्पन्न करने के कारण घटित होते हैं। हमारे आस–पास के लोग अपनी अपेक्षाओं द्वारा हम पर दबाव डालते हैं और हमें वैसा स्वीकार नहीं करते जैसे कि हम हैं। यदि हमारे आस–पास का कोई व्यक्ति हमें बिना शर्त के सकारात्मक सम्मान देता है तो मुश्किल से हमारे होने और हमारे चाहने में कोई अन्तर होगा। इसका अर्थ हुआ कि आदर्श आत्म और यथार्थ आत्म में बहुत कम अंतर होता है। इससे हमारे कार्य करने में बहुत बड़ा सामंजस्य पैदा होता है जिसे ससाधकत्व कहते हैं।

मानवतावादी चिकित्सा का उद्देश्य चिकित्सक द्वारा बिना शर्त के सकारात्मक सम्मान का वातावरण निर्माण करके रोगी को उसकी वास्तविक भावनाओं और आंतरिक आत्म के संपर्क में आने का अवसर प्रदान करना है। तब रोगी को अधिक दायित्व संभालना और अपनी अंतर आत्मा की चाह के अधिक अनुकूल रहना होता है। अंत में यह विकास और जीवन में अधिक संतोष की ओर ले जाता है।

पाठांत अभ्यास

निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर दीजिये :

1. मनोविश्लेषण का मूल उद्देश्य एवं प्रक्रम का वर्णन कीजिये।
2. अन्तःविस्फोटक चिकित्सा, फ्लडिंग और व्यवस्थित निःसंवेदीकरण में प्रयुक्त उपागमों में भेद रेखांकित कीजिये।
3. वर्तमान में प्रयोग की जाने वाली तीन दैहिक चिकित्साओं – रसोचिकित्सा, विद्युत सापेक्षीय चिकित्सा और मनोशल्य–चिकित्सा, का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
4. मानवतावादी मनोचिकित्सा में प्रयोग किए जाने वाला मूल उपागम क्या है?

आपने क्या सीखा

- औषधीय चिकित्सा प्रतिमान मनोवैज्ञानिक विकारों की चिकित्सा में ज्यादातर दवाओं और कभी–कभी विद्युत आघात और शल्यक्रिया में विश्वास करता है।
- मनोविश्लेषण वह मनोचिकित्सा है जो व्यक्ति के मन में अचेतन द्वंद्वों को पूर्व जीवन अनुभवों से उद्घाटित करती है और व्यक्ति को उनको चेतन रूप में स्वीकार करने में सहायता करती है।
- व्यवहार परक चिकित्सा क्लासिकी और क्रियाप्रसूत अनुकूलन सिद्धांतों पर आधारित है।
- मानवतावादी चिकित्सा व्यक्ति को अपनी गहन आवश्यकताओं और कामनाओं के संपर्क में आने में सहायता देती है और तब वे अपनी आंतरिक और यथार्थ प्रकति के अधिक अनुकूल रहने का दायित्व लेते हैं।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

24.1

1. दैहिक
2. रसोचिकित्सा, विद्युत सापेक्षीय चिकित्सा, मनोशल्य चिकित्सा
3. न्यूरोलिप्टिक
4. अवसाद विरोधी
5. चिंता विरोधी

24.2

1. मुक्त साहचर्य तकनीक
2. अचेतन
3. सम्मोहन और स्वप्न व्याख्या
4. क्लासिकी अनुकूलन
5. अंतः स्फोटक चिकित्सा, फ्लडिंग और व्यवस्थित निःसंवेदीकरण
6. प्रसूत अनुकूलन

25

स्वास्थ्य मनोविज्ञान

जीवन का आनन्द लेने के लिये स्वस्थ रहने की आवश्यकता है। जो लोग स्वस्थ नहीं होते उन्हें रोगी कहा जाता है। वे ठीक से अपने कार्य सम्पादित नहीं कर सकते हैं और जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते। स्वास्थ्य व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के लिये महत्वपूर्ण है। समाज का एक उत्पादक सदस्य होने के नाते हमें मन से जागरूक और शरीर से क्रियाशील होने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य मनोविज्ञान में वे मनोवैज्ञानिक कारक आते हैं जो स्वास्थ्य को बनाये रखने और उन्नत करने में सहायक होते हैं। यह उन कारकों की भी खोज करता है जो रोग की स्थिति पैदा करते हैं। हाल के वर्षों में यह क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि हमारी जीवन शैली, और सोचने एवं व्यवहार करने के तरीके लोगों के स्वास्थ्य स्तर में योगदान करते हैं। विशेषज्ञों का सोचना है कि व्यायाम, पौष्टिक भोजन लेने और धूम्रपान जैसी बुरी आदतों में परिवर्तन से रोग और मत्यु को रोका जा सकता है। यह पाठ आपको स्वस्थ जीवन बिताने और कुशल से रहने से संबंधित मुद्दों को समझने और सीखने में सहायता करेगा।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप योग्य होंगेः

- स्वास्थ्य और सुखी जीवन के संप्रत्यय को समझने के;
- स्वास्थ्य को प्रोन्नत करने वाले व्यवहार का वर्णन करने के;
- स्वास्थ्य के खतरों के बारे में सीखने के;
- स्वास्थ्य और सुखी जीवन को उन्नत करने के लिय आवश्यक जीवन शैली अपनाने के सम्बन्ध में पूरी जानकारी पाने के;

टिप्पणी

- अनचाहे कामोत्तेजन और अन्य प्रकार के दुर्व्यवहार से बचने के आत्म प्रबन्धन और नियंत्रण कौशल को स्पष्ट करने के;
- सुरक्षित एवं असुरक्षित यौन में भेद करने के; और
- असुरक्षित यौन से होने वाले खतरों जैसे आर.टी.आई., एसटीडी, एचआईवी/एड्स और प्रेषण के अन्य तरीकों को सूचीबद्ध करने के।

25.1 स्वास्थ्य और कुशलक्षेम का संप्रत्यय

स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक कुशलक्षेम की अवस्था को कहते हैं। रोग की अनुपस्थिति से स्वास्थ्य का भ्रम नहीं होना चाहिये। यह एक सकारात्मक अवस्था है। रोग की अनुपस्थिति के साथ ही इसमें सफल होना और नियंत्रण करना भी आते हैं। लोगों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में स्वास्थ्य का केन्द्रीय स्थान है। आज की दुनिया में लोगों के गुणात्मक जीवन को चारों ओर से चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जिसका परिणाम लोगों का गिरता स्वास्थ्य है। एक ओर बाहरी पर्यावरण बड़ी तेजी से बदल रहा है। इससे अनेक पर्यावरणीय तनावों से सफलतापूर्वक निपटने की आवश्यकता है। सामाजिक संरचना में ऐसे परिवर्तन जैसे परिवार और अन्य सामाजिक संस्थाओं का विघटन प्रतिस्पर्धा ओर उपभोक्तावाद में बढ़ोत्तरी भी निराशा, अकेलेपन, द्वन्द और असहयोग के बढ़ने में योगदान कर रहे हैं। परिणामस्वरूप मनोदैहिक विकार बढ़ते जा रहे हैं। इस परिदश्य के विश्लेषण बताते हैं कि स्वास्थ्य और कुशलक्षेम दुर्घटना होते जा रहे हैं।

आज के व्यस्त जीवन में हममें से हर व्यक्ति विभिन्न प्रकार के दबाव और तनाव अनुभव कर रहा है। दबाव अब एक मूक मारक है। शारीरिक स्वास्थ्य साथ ही मनोवैज्ञानिक कुशलक्षेम पर इसका निषेधात्मक प्रभाव पड़ता है। तकनीकी दष्टि से दबाव ऐसी घटनाओं जो हमारी मनोवैज्ञानिक क्रियाविधि के लिये खतरे वाली और बाधक होती है, के प्रति हमारी अनुक्रिया की ओर संकेत करता है। पर्यावरण में वे स्थितियां या कारक जो दबाव पैदा करते हैं स्ट्रेस कहे जाते हैं यद्यपि स्ट्रेस सूची लम्बी हो सकती है किन्तु उन्हें मुख्य चार श्रेणियों में बांटा जा सकता हैः दबावयुक्त जीवन घटनायें (जैसे तलाक, अवकाश ग्रहण, गर्भकाल, किसी प्रिय व्यक्ति का निधन, बेकारी) दैनिक जीवन की परेशानियां (जैसे खरीदारी, बहुत अधिक वचनबद्धता, कार्यस्थल पर विषम परिस्थिति में वचनबद्धता); कार्य सम्बन्धी दबाव (जैसे भूमिका की संदिग्धता, अरुचिकर कार्य पर्यावरण, सहकर्मी के साथसंघर्ष, उद्देश्य आपूर्ति) और तबाही मचाने वाली विभीषिकायें (जैसे भूकम्प, बाढ़)। दबाव हर व्यक्ति के स्वास्थ्य के खतरे का संभावित साधन हो सकता है, परन्तु इसका प्रभाव व्यक्ति और पर्यावरण के मध्य संबंध की डिग्री पर निर्भर करता है। लोग अनेक चित्तवत्तियों जैसे आशावादिता, नियंत्रण का प्रत्यक्षीकरण, स्वास्थ्य–विश्वास, सांवेगिक स्थिति ओर व्यक्तित्व प्रतिमान में भी भिन्न होते हैं जो दबाव का सामना करने में सहायता या बाधा कर सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 25.1

1. वर्तमान समय में गुणात्मक जीवन के लिये खतरा पैदा करने वाली मुख्य चुनौतियों की सूची बनाइये।
2. प्रत्येक के तीन–तीन उदाहरण दीजिये (क) दबावयुक्त जीवन घटनायें (ख) दैनिक जीवन की परेशानियां (ग) कार्य सम्बन्धी दबाव

भारतीय चिन्तन में स्वास्थ्य का अर्थ ' स्व में स्थित' होता है। अन्य शब्दों में एक आत्मस्थ व्यक्ति स्वस्थ कहा जा सकता है। आयुर्वेद या जीवन विज्ञान में संयम या उपयुक्तता स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

25.2 स्वास्थ्यवर्धक व्यवहार

स्वस्थ रहने के लिये व्यवहार के कुछ प्रतिमान नीचे दिये जा रहे हैं:

1. विश्रान्ति

दबाव कम करने के लिये विश्रान्ति बहुत उपयोगी है। ध्यान, जिसमें हम अपने अवधान को एक वस्तु, शब्द या वाक्यांश पर केन्द्रित करते हैं, का बहुत ही शान्तिदायी प्रभाव होता है। दूसरे प्रकार की विश्रान्ति गत्यात्मक मांसपेशी विश्रान्ति कहलाता है। इसके अन्तर्गत लेटकर या आराम से बैठकर मांसपेशियों को व्यवस्थित रूप से तानना और ढीला छोड़ना आता है। इस उद्देश्य के लिये योगनिद्रा का भी प्रयोग किया जाता है। विश्रान्ति में कभी–कभी गहरी सांस लेना, थोड़ा सा रोकना और फिर धीरे–धीरे छोड़ा (पूरक, कुंभक, रेचक)

2. व्यायाम

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने में नियमित व्यायाम सहायक होता है। इससे हदय और फेफड़े मजबूत होते हैं और शरीर द्वारा आक्सीजन के उपयोग में बढ़ोत्तरी होती है। इस काम के लिये अपने स्थान पर धीरे–धीरे दौड़ना, दौड़ना, साइकिल चलाना और प्राणायाम पर आधारित व्यायाम बहुत उपयोगी होते हैं। इसके लाभ के अन्तर्गत हदयपेशियों का पूर्ण स्वस्थ और सशक्त होना, शारीरिक श्रम की बढ़ी क्षमता, शारीरिक वजन का सन्तुलित रहना, मासंपेशियों की दढ़ता और शक्ति में बढ़ोत्तरी, उच्च रक्तचाप पर नियंत्रण, दबाव की सहनशक्ति में बढ़त, अवधान और एकाग्रता का बढ़ना आते हैं। व्यायाम से लाभ पाने के लिये नियमित रूप के करना चाहिए।

3. वजन पर नियंत्रण

भोजन की मात्रा का नियमितीकरण एक जटिल व्यवस्था द्वारा निश्चित होता है। वास्तव में जैव रासायनिक का एक संच इसे नियंत्रित करता है। अनियमित भोजन शरीर में

टिप्पणी

अधिक वसा का एकत्रीकरण करता है। परिणामस्वरूप मोटापा, रक्तचाप और कोलेस्ट्राल के बढ़ने में खतरे के कारक का काम करता है। मोटापे को अकाल मत्यु का कारण पाया गया है। जैविक कारक और दबाव दोनों ही मोटापे में योगदान करते हैं। वजन का नियंत्रण बहुत कठिन होता है। डाक्टरों द्वारा भोजन निर्देशन आवश्यक हो जाता है, किन्तु कभी–कभी कम भोजन वजन को बहुत कम कर देता है। उपवास, योग, शल्यचिकित्सा, भूख को दबाने की दवाइयों के प्रयोग भी इस कार्य के लिये प्रयोग किये जाते हैं। वजन नियंत्रण के बहुआयामी उपागम अधिक कारगर पाये गये हैं। खाने की आदतों का विश्लेषण लोगों को उनकी खाने के प्रतिमानों के बारे में सतर्क करने के लिए प्रयोग किया जाता है, करते हैं। खाने को प्रभावित करने वाले उद्दीपनों का विश्लेषण खाने को नियमित करने में अन्तर्दष्टि प्रदान करता है। लोगों को पर्यावरण के पूर्व में अधिक खाने को प्रोत्साहन देने वाले उद्दीपनों को सुधारने का प्रशिक्षण दिया जाता है। रोगियों को खाने की प्रक्रिया को ही नियंत्रित करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। अधिक खाने पर नियंत्रण करने का भाव ही वजन नियंत्रण में योगदान करता है।

4. भोजन

स्वस्थ भोजन हम सबका उद्देश्य होना चाहिये। अध्ययनों से पाया गया है कि भोजन की आदतें कैंसर, उच्च रक्तचाप, हदयपेशियों की बीमारियों के विकास में बुरी तरह सहायक होती हैं। कम बसा और कम कोलेस्ट्राल वाला भोजन हदय रोग की घटनाओं को कम कर देता है। भोजन नियंत्रण में खाने की योजना, पकाने के तरीके और खाने की आदतें शामिल होती हैं। देखा गया है परिवार के साथ हस्तक्षेप भोजन में परिवर्तन को बढ़ावा देने में और उसे बनाये रखने में मदद करता है।

पाठगत प्रश्न 25.2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः

   (क) मांसपेशियों को विश्रांति देने में ..... श्वांस रोकना और धीरे–धीरे ..... आता है।

   (ख) वजन नियंत्रण के लिय ..... का ..... विकसित करना।

   (ग) भोजन नियंत्रण में ..... योजना ..... के तरीके और ..... आदतें आते हैं।

स्वास्थ्य समस्याओं की ओर ध्यान देना

अपनी स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति समय रहते ध्यान देना बहुत महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्य के किसी मामले में बिना विलम्ब के क्योंकि कभी–कभी समस्या बड़ी तेजी से बढ़ती है,

ध्यान देना प्राथमिक महत्व का होता है। एक बार शरीर में शारीरिक या मानसिक शिकायत या लक्षण दिखाई दे, उसे योग्य डाक्टर को बताना चाहिये। उनके सुझाव और मार्गदर्शन के अनुसार तुरन्त कदम उठाना चाहिये।

विध्यात्मक संवेग

अक्सर कहा जाता है कि मुस्कराता चेहरा और प्रसन्नता अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का परिचय देता है। यह सच है किन्तु इसमें एक महत्वपूर्ण जानकारी छूट जाती है कि विध्यात्मक संवेगों की अनुभूति जैसे प्रेम, स्नेह, रुचि, तदोनुभूति, क्षमा, कतज्ञता आदि व्यक्ति के स्वास्थ्य की स्थिति में योगदान करते हैं। वर्तमान अध्ययनों से पता चला है कि विभिन्न विध्यात्मक संवेगों के अनुभव व्यक्ति के स्वास्थ्य के स्तर को उन्नत कर देते हैं इसलिये दैनिक जीवन में विध्यात्मक संवेगों का अनुभव करने के लिये सुअवसरों को खोजना, व्यवस्थित करना और बनाना महत्वपूर्ण है।

25.3 स्वास्थ्य के लिये खतरे

अब तक यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि बहुत से रोग और स्वास्थ्य के खतरे, अन्ततः जो हमारे दीर्घ जीवन को कम कर देते हैं, हमारे व्यवहार से सम्बन्धित होते है। इस प्रकार की स्थितियों को सुधारने के लिये हमें जीवन शैली में कुछ करने और न करने को अपनाने की जरूरत है। अक्सर लोग ऐसी आदते अपना लेते हैं जो समस्यायें पैदा करती हैं। वे अनेक आत्म विनाश की आदतों में लीन हो जाते हैं। कुछ ऐसी आदतें, जो स्वास्थ्य के लिये जोखिम पैदा करती हैं नीचे दी जा रही हैं।

1. **नशीले पदार्थों का प्रयोगः** आधुनिक काल में ये स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाली आदतें बहुत सामान्य हैं। अधिक खुराक लेने पर व्यक्ति मर सकता है। नशीले पदार्थों का व्यसन अक्सर श्वसन प्रणाली, आंतों, विशेषकर यकत तथा सामान्य रूप से शरीर के दूसरे अंगों को क्षति पहुँचाता है। चिन्तन और निर्णय शक्ति भी प्रभावित होती है। विशेषकर शराब यकत को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है।

2. **धूम्रपानः** अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि धूम्रपान करने वालों में कैंसर और हदयरोग की अधिक संभावना रहती है। धूम्रपान से असाध्य श्वसनी और श्वसन विकार पैदा हो जाते हैं। यह भी बात बड़ी रोचक है कि धूम्रपान के खतरे केवल धूम्रपान करने वाले तक सीमित नहीं रहते। परिवार के अन्य सदस्य, सहकर्मी जो धूम्रपानकर्ता के साथ रहते हैं अनेक प्रकार के स्वास्थ्य विकारों से ग्रसित होने की संभावना रहती है। धूम्रपान के साथ ही अधिक वजन और दबाव अधिक खतरनाक हो जाते हैं।

टिप्पणी

3. **तम्बाकू का सेवनः** भारत में तम्बाकू अनेक प्रकार से प्रयोग की जाती है। लोग कच्ची तम्बाकू खाते, सूंघते और पान के साथ चबाते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि तम्बाकू के प्रयोग का सम्बन्ध मुख कैंसर से होता है। ये मौखिक स्वच्छता को बुरी तरह प्रभावित करती है जिसमें दांत और मसूढ़े भी शामिल हो सकते हैं

4. **न्यून पोषक आदतेंः** हाल के वर्षों में न्यून भोजन की आदतों में बढ़त आई है। तुरंत आहार और खाने की वस्तुओं का, जो कोलेस्ट्राल, बसा, कैलोरीज आदि के मामले में असन्तुलित होते हैं, प्रयोग आजकल का रिवाज बन गया है। जन सामान्य को कच्चे पदार्थों और फलों के अधिक सेवन के लाभों के प्रति जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है। आहार को स्वस्थ जीवन के लिये योजनाबद्ध किया जाना चाहिए। नये स्वाद के प्रयोग के लिये लोग अक्सर पोषण में असन्तुलित भोजन की ओर जाते हैं। अनियंत्रित भोजन मोटपा बढ़ा सकता है।

5. **व्यायाम का अभावः** आधुनिक जीवन मूल्य, सफेद पोश नौकरियां बढ़ते हुये अवसादी जीवन की ओर ले जा रहे हैं। उनमें व्यायाम के लिये समय और क्षमता का अभाव है। स्वस्थ शरीर के लिए पूरे शरीर के व्यायाम की आवश्यकता है। काहिली, समय का दबाव और शारीरिक प्रक्रम के बारे में अज्ञान बहुत से लोगों को व्यायाम से वंचित कर देता है। परिणाम स्वरूप शरीर कमजोर, रोगी और समय के पूर्व बढ़ा होने लगता है।

6. **असुरक्षित यौनः** एच.आई.वी और एड्स नशाखोरों (साझा सुई द्वारा) समलैंगिक, अधिक लोगों से समागम करने वाले लोगों में ये घातक बीमारी पाई जाती है। अनुमानतः 6.5 करोड़ लोग एड्स से मर चुके हैं। संवाहन के बाद ये वायरस तेजी से पूरे शरीर में फैल जाता है। इन जीवाणुओं द्वारा संक्रमित व्यक्ति अनेक असामान्यताओं से पीड़ित हो जाता है जैसे अन्तः तंत्रिका और हदय तंत्रिका कार्यविधि।

पाठगत प्रश्न 25.3

रोग और उसके स्वरूप को पैदा करने वाले कारकों की दोनों सूचियों का मिलान कीजियेः

1. मद्यपान	(क) श्वांस रोग
2. धूम्रपान	(ख) आंत्र रोग
3. त्वरित भोजन	(ग) एच.आई.वी/एड्स
4. असुरक्षित यौन	(घ) मोटापा

25.4 कुशलक्षेम के लिये हस्तक्षेप

दीर्घजीवन और स्वस्थ तथा पुनरोत्पादक जीवन हर व्यक्ति का सपना होता है। हम उन लोगों से, जो इस ईर्ष्या उत्पन्न करने वाले लक्ष्य को पाने में सफल हो चुके हैं, इसके बारे में सीख सकते हैं। ऐसे सफल वद्ध व्यक्तियों को देखकर हम समझ सकते हैं कि बाकी लोगों से वे तीन बातों में भिन्न हैं जैसे आहार, शारीरिक क्रिया और सामुदायिक जीवन में लीनता। ये लोग विशेषकर हरी पत्ती वाली तथा मूल वाली सब्जियों, ताजे दूध, ताजे फल और कम तथा मध्यम मात्रा में खाने को वरीयता देते हैं। वे दैनिक भोजन से ऊष्मा लेने को कम एवं मध्यम बनाये रखते हैं। वे शारीरिक क्रिया और टहलने में भी नियमित रूप से व्यस्त रहते हैं और वे परिवार तथा समुदाय के मामलों में भी भाग लेते रहते हैं।

विस्तत प्रकार के शोधों के आधार पर यह अनुभव किया जाने लगा है कि कुछ रोकथाम वाली रणनीति अपनाने से ही अच्छे स्वास्थ्य के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है। इन रणनीतियों का संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जा रहा है:

1. **प्राथमिक रोकथाम:** इसमें रोके जा सकने वाले रोग या चोट के घटने को कम या समाप्त किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत व्यवहार और स्वास्थ्य, अभिप्रेरण स्वस्थ व्यवहार के अभ्यास को पुरोन्नत करने और गिरे स्वास्थ्य को सुधारने के लिए कौशलों को सीखने में सहायता करना आता है।

2. **गौण रोकथाम:** इस प्रकार की रोकथाम का उद्देश्य रोगी के रोग की गंभीरता को कम करना है। शीघ्र जानकारी की सहायता से निदानात्मक परीक्षण का उपयोग करके इलाज के लिये कदम उठाये जा सकते हैं। लोग शरीर के अंगों का आत्म परीक्षण और अंगों की क्रियाविधि के बारे में सीख सकते हैं, इससे उन्हें रोग की रोकथाम में सहायता मिल सकती है।

3. **जीवन शैली में बदलाव:** यह बात समझनी चाहिये कि केवल दवा ही रोग के उपचार के लिये पर्याप्त नहीं है जबकि जीवन शैली त्रुटिपूर्ण है। यह समझना जरूरी है कि हमारा सोचना और व्यवहार करना अन्तर्सम्बन्धित है। मन और शरीर साथ–साथ चलते हैं। विभिन्न प्रकार के रोग कई बार हमारे विश्वासों और आदतों के कारण बनते हैं। उत्तम स्वास्थ्य की स्थिति प्राप्त करने के लिये मन और शरीर का सामंजस्य प्राप्त करना महत्वपूर्ण है। इसी विचार से भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद ने स्वास्थ्य और कुशलक्षेम के लिये कहा है कि ये उचित आहार, विहार, आचार और विचार पर निर्भर करते हैं। इनके मुख्य सिद्धान्त, जिनपर हमें ध्यान देना आवश्यक है, निम्नांकित हैं:

आहार

- शाकाहारी भोजन सुरक्षित और शरीर को बल प्रदायक होता है।

- ताजे फल, हरी सब्जियां जिनमें रेशे अधिक होते हैं, दही और शहद जिनसे विटामिन, ऐन्टीआक्सीडेन्ट्स, आइरन आदि मिलते हैं जो स्वास्थ्य के लिये उपयोगी होते हैं।
- विरोधी प्रभाव वाले भोजन से बचना (जैसे गर्म दूध और आइसक्रीम से बचना चाहिये)

आचार

- मौसम के अनुसार दिनचर्या निर्धारित करनी चाहिये।
- पानी अधिक पीना, नियमित मालिश, व्यायाम और योगिक आसन शरीर को चुस्त और क्रियामान रखते हैं।
- उचित समय प्रबन्धन का कौशल विकसित करना।

विहार और विचार

- समायोजनकारी बुद्धि, आलोचना की स्वीकति, दूसरों की सांवेगिक आवश्यकताओं की समझ विकसित करना।
- आत्म संयम का अभ्यास और व्यक्ति को काम और लालच से चालित नहीं होना चाहिये।
- भय, क्रोध, ईर्ष्या और चिन्ता जैसे नकारात्मक संवेगों के प्रभाव में नहीं आना चाहिये।
- स्थायी मित्रता और सामाजिक सम्बन्ध विकसित करना।
- आत्म जागरूकता, दूसरों से सम्बन्ध और आध्यात्मिक झुकाव विकसित करना।

पाठगत प्रश्न 25.4

1. सफल वद्धावस्था दर्शाने वाले लोगों में कौन से महत्वपूर्ण कारक होते हैं?
2. प्राथमिक रोकथाम के लिये उठाये जाने वाले कदमों की सूची बनाइये।
3. आयुर्वेदिक जीवन शैली के अंगों का वर्णन कीजिये।

आपने क्या सीखा

- स्वास्थ्य व्यक्ति कि लिये व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों दष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें शारीरिक स्थिति, मानसिक और आध्यात्मिक कुशलक्षेम आते हैं।

- समकालीन जीवन परिवार, आर्थिक स्थिति, कार्य और पर्यावरण के संदर्भ में दबावपूर्ण अनुभवों से भरा है।
- प्रमुख दबावों को दबावपूर्ण जीवन घटनायें, दैनिक जीवन की परेशानियां, कार्य सम्बन्धी दबाव और तबाही मचाने वाली विभीषिकायें में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है।
- स्वास्थ्यवर्धक व्यवहार के अन्तर्गत विश्रान्ति, व्यायाम, वजन नियंत्रण और आहार आते हैं। उपयुक्त निदान द्वारा स्वास्थ्य समस्याओं का ध्यान देना चाहिये। सकारात्मक चिन्तन का स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- स्वास्थ्य को खतरों में शराब और नशीले पदार्थों का सेवन, धूम्रपान, तम्बाकू सेवन, निम्नपोषण, व्यायाम का अभाव और असुरक्षित यौन आते हैं।
- सफल वद्धावस्था का सम्बन्ध मध्यम खाने की आदतें, शारीरिक क्रिया और सामुदायिक कार्य से है।
- रोकथाम प्राथमिक और गौण स्तरों पर हो सकता है। फिर भी जीवन शैली में बदलाव की केन्द्रीय भूमिका है।
- आयुर्वेद के अनुसार आहार, विहार, आचार और विचार पर ध्यान दिया जाना चाहिये।

पाठांत अभ्यास

1. स्वास्थ्य और कुशलक्षेम के संप्रत्यय की चर्चा कीजिये।
2. स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के कौन–कौन से कारक हैं?
3. स्वास्थ्य के कुछ खतरों का उल्लेख कीजिये।
4. स्वास्थ्य को उन्नत करने की कुछ जानकारी सुझाइये।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

25.1

1. पर्यावरण में परिवर्तन, परिवार का विखराव, प्रतिस्पर्धा, अकेलापन।
2. (क) प्रियजन की मत्यु, बेकारी, ऋण
   (ख) कार्यस्थल पर आना–जाना, पानी इकट्ठा करना, बच्चों को स्कूल भेजना
   (ग) अधिक कार्य–भार, असमंजन भूमिका, समय का दबाव।

टिप्पणी

25.2

(क) दीर्घश्वांस, रोकना, निकालना

(ख) नियंत्रण, योगदान

(ग) भोजन, पकाना, खाना

25.3

1. ख 2. क 3. घ 4. ग

25.4

1. आहार, शारीरिक क्रिया, सामुदायिक जीवन में लीनता
2. स्वास्थ्य के बारे में सीखना, अभिप्रेरणा को उन्नत करना, स्वस्थ व्यवहार के कौशलों का अभ्यास, निम्न स्वास्थ्य अभ्यास में सुधार
3. आहार, विहार, आचार और विचार

पाठान्त अभ्यास के लिये संकेत

1. सन्दर्भ 25.1
2. सन्दर्भ 25.2
3. सन्दर्भ 25.3
4. सन्दर्भ 25.4